वेद-दर्शन-योग

(संशोधित एवं परिवर्धित)

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज

अखिल भारतीय संतमत-सत्संग प्रकाशन

प्रकाशक
अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग-प्रकाशन
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट,
पत्रालय : बरारी, भागलपुर-३ (बिहार)

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

ISBN-978-81-926828-4-6

षष्ठ संस्करण : ३,१०० प्रतियाँ, संवत् २०६१ वि० (२००५ ई०)
सप्तम संस्करण : २,१०० प्रतियाँ, संवत् २०६९ वि० (२०१२ ई०)
अष्टम संस्करण : २,१०० प्रतियाँ, संवत् २०७३ वि० (२०१६ ई०)

मूल्य - २५/- रुपये

मुद्रक :
'शान्ति-सन्देश' प्रेस
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३ (बिहार)

विषय-सूची

ऋग्वेद-संहिता

क्रमांक	विषय	पृष्ठारम्भ	पृष्ठान्त
	आमुख — —	—'ए' से	'अः' तक।
१	प्रकाशक की ओर से (प्रथम संस्करण)	- 'क' से	'छ' तक।
२	प्राक्कथन — —	— 'ज' से	'ढ' तक।
३	भूमिका — —	—'ण' से	'ध' तक।
४	प्रकाशकीय (द्वितीय संस्करण)	— 'न' से	'प' तक।
५	सम्मति — —	— 'फ' से	'र' तक।
६	मोक्ष — —	— १ से	८ तक।
७	ज्योति और अन्तर्नाद —	— ८ से	३२ तक।
८	ब्रह्म की व्यापकता, प्रकृति और जीव	— ३२ से	४२ तक।
९	उत्तम रीति से ध्यानाभ्यास तथा त्रिकाल सन्ध्योपासना —	— ४३ से	४५ तक।
१०	वाणी (शब्द) द्वारा ब्रह्मपद की प्राप्ति	— ४५ से	४७ तक।
११	परमपद तक पहुँचे हुए का अनुकरण और अनुसरण —	— ४७ से	४८ तक।
१२	गोवध-निषेध — —	— ४८ से	४९ तक।
१३	इन्द्रियों के ज्ञान से आत्मा परे	— ५० से	५१ तक।
१४	अपने अभिमुख दृष्टियोग —	— ५१	
१५	वीर्य-संचय, दमशील का महत्त्व और ऊर्ध्वरेता — —	— ५२ से	५३ तक।

१६ सत्संग-यज्ञ — — — ५३ से ५४ तक।
१७ निर्गुण और सगुण उपासना — ५४ से ६२ तक।
१८ आरोहण — — — ६२ से ६३ तक।
१९ ब्रह्म और जीव में अभेद का संकेत — ६३ से ६४ तक।
२० उपासित होकर ईश्वर हृदय में प्रकट होता है — — — ६४
२१ परमात्मा पवित्र-हृदय में प्रकट होता है— ६५
२२ परमात्मा तक आरोहण — — ६५ से ६७ तक।
२३ धर्म के दस लक्षण — — ६७ से ६८ तक।
२४ सत्संग-तप में पवित्र नहीं होनेवाले को ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती है — ६८ से ६९ तक।
२५ न सत् था और न असत् था, सृष्टि के पूर्व में तमस् था — — ६९ से ७० तक।
२६ सृष्टि के पूर्व की बातें — — ७० से ७१ तक।
२७ सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में परमात्मा के अतिरिक्त कोई नहीं जानता है — ७२ से ७४ तक।
२८ त्रिकाल सन्ध्या — — ७४
२९ आपस में सब मेल से रहो और ईश्वरोपासना करो — — ७५

सामवेद-संहिता

३० वेदवाणी के अतिरिक्त मनुष्य-वाणियों में ईश्वर की स्तुति — — ७६

३१ समस्त उत्पन्न पदार्थों में परमात्मा का निवास — — ७६ से ७७ तक।

३२ प्राण-अपान रूप आहुति — — ७७ से ७८ तक।

३३ परमात्मा अवाङ् मनसगोचर - ७९

३४ ध्यान लगाने का स्थान — — ७९ से ८० तक।

३५ जल में जल की भाँति परमात्मा में जीवात्मा का मिलन — — ८०

३६ आत्मा की सत्यस्वरूप प्रियवाणी — ८१ से ८२ तक।

३७ तीन वेद — — ८२

३८ ज्योति का साक्षात्कार — — ८३

३९ अनाहत नाद को कौन नहीं प्राप्त कर सकता — — ८३ से ८४ तक।

४० ब्रह्मानन्द के मधुर रस से पूर्ण अनाहत नाद — — ८५

४१ अनाहत नाद करनेवाली धारा — ८५ से ८६ तक।

४२ 'सोऽहं' या 'ओं' अन्त नाद — ८६ से ८७ तक।

४३ ब्रह्म का घोष मेघगर्जन के तुल्य — ८७

४४ अनाहत नाद के अभ्यास से प्राणवायु को वश करना — — ८८

४५ सर्वदर्शी परमात्मा नाद करता हुआ देह में व्याप्त है — — ८८ से ८९ तक।

४६ व्यापक आत्मा अनाहत रूप से नाद करता है — — ८९ से ९० तक।

४७ रमणीय अनाहत नाद — — ९० से ९१ तक।
४८ अनाहत नाद या परमेश्वर की स्तुति से मोक्ष — — ९१
४९ अध्यात्म यज्ञ के समक्ष द्रव्य यज्ञ व्यर्थ — — ९१ से ९२ तक।
५० आत्मा से ही आत्मज्ञान और मोक्ष — ९२

यजुर्वेद संहिता

५१ जीवन्मुक्त तथा अमर अविनाशी मोक्ष — ९३ से ९५ तक।
५२ प्राणायाम, ज्ञान और ध्यान से परमेश्वर प्रकट होता है — ९५ से ९७ तक।
५३ चेतनांश — — ९७ से ९८ तक।
५४ ब्रह्मपद को प्राप्त करना — — ९९
५५ विश्व को उत्पन्न करनेवाली ईश्वर की वाणी — —९९ से १०२ तक।
५६ प्राणियों में ध्वनि की विद्यमानता — १०२
५७ गुरु, विद्वान और पूज्य पुरुषों से विनय — १०३
५८ दृष्टि और शब्द-साधन —१०४ से १०५ तक।
५९ ज्योतिर्ध्यान का महत्त्व —१०५ से १०६ तक।
६० ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के परे — —१०६ से १०८ तक।
६१ ईश्वर का ज्ञान और साक्षात्कार —१०८ से १०९ तक।
६२ ब्राह्ममुहूर्त्त में ईश्वर और आचार्य की उपासना — — ११० से १११ तक।

(ए)

अथर्ववेद संहिता

६३ आहुति — —११२ से ११५ तक।

६४ आत्म-यज्ञ — —११५ से ११६ तक।

६५ प्रकाशमय लोक — —११६ से ११८ तक।

६६ हृदयों में ध्वनि कर रहा है — —११८ से ११९ तक।

६७ वेदों की संस्करण-सूची — — १२०

कुछ संकेत

ऋग्वेद संहिता

अ० = अध्याय। व०= वर्ग। अ० = अनुवाक। ऋ० = ऋग्वेद।

सू० = सूक्त। खं० = खण्ड। पृ० = पृष्ठ। मं० = मंडल।

सामवेद संहिता

प्र० = प्रपाठक। द० = दशति। अ० = अध्याय।

यजुर्वेद संहिता

मं० = मन्त्र।

अथर्ववेद संहिता

कां० = काण्ड।

गी० र० = गीता रहस्य।

भा० = भाष्य।

आमुख

सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज एक अत्यन्त सदाचारी एवं तपोनिष्ठ सन्त हैं। वे लोककल्याण के लिए उपनिषद्वाणी तथा सन्तवाणी के आधार पर साधना का प्रचार कर रहे हैं। उनकी साधना की मुख्य प्रक्रियाएँ हैं — दृष्टियोग तथा नादानुसन्धान। उन्होंने कई पुस्तकों की रचना की है, जिनमें सूक्ष्म भक्ति तथा योग की सूक्ष्म साधना का रहस्योद्घाटन किया है। उनकी प्रचारित साधना का वर्णन वेद में है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर श्री स्वामीजी ने 'वेद-दर्शन-योग' की रचना करके दिया है। इस पुस्तक में श्री स्वामीजी महाराज ने वेद-वचनों की तुलना सन्त-वचनों से की है।

सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ऋषि के हृदय में परमात्मा ने वेद का प्रकाश किया और उन्होंने वेद की रचना की। लोग पूछते हैं कि वेद का प्रकाश अब परमपिता परमात्मा की ओर से आता है कि नहीं ? उत्तर में निवेदन है कि प्रकाश आने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है; क्योंकि वेदों का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के मन में प्रतिष्ठित है। निम्नलिखित वेदमन्त्र से परिचय प्राप्त कीजिए -

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन्प्रतिष्ठता रथनाभाविवाराः।
यस्मिश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु॥

यजुर्वेद, अ० ३४, मन्त्र ५

अर्थात् जिस मन में ऋक्, जिसमें यजुः, जिसमें साम, रथ की नाभि में अरों के समान प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाओं का सकल चित्त निहित है, वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो ।

उपर्युक्त मन्त्र से ज्ञात होता है कि वेदों का ज्ञान मनुष्य के मन में है। साधना से उस ज्ञान का साक्षात्कार कर लेने की आवश्यकता है। भारतवर्ष के सन्त कबीर, दादू , नानक आदि ने साधनों के द्वारा उस ज्ञान का साक्षात्कार कर लिया था । इसलिये उनकी वाणी में उन सत्यों का प्रतिपादन मिलता है, जिनका वर्णन वेदों में है । अधिकांश सन्त पढ़े-लिखे नहीं थे तथा वे नीच जाति में उत्पन्न हुए थे । अतः उनमें वेद पढ़ने की बात बहुत दूर थी । जिस युग में कबीर आदि सन्त हुए थे, उस समय 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्' स्त्री तथा शूद्रों को वेद नहीं पढ़ना चाहिये--का बोलवाला था। उस समय कबीर साहब को कौन पढ़ाता । तथापि सन्तों की वाणी में वेदवचनों से आश्चर्यजनक साम्य है। नीचे लिखे ऋग्वेद के एक मन्त्र से संत कबीर की वाणी की तुलना कीजिये ।

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।
मृडा सुक्षत्र मृडय ।

ऋग्वेद, मंडल ७, सू० ८९ ॥४॥

अर्थात् मैं जल में खड़ा हूँ और प्यास से कष्ट पा रहा हूँ। हे परमात्मा! मुझे सुखी करो और मेरे द्वारा अन्यों को भी सुखी कराओ।

पानी बिच मीन पियासी । मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी ॥
आतम ज्ञान बिना सब झूठा । क्या मथुरा क्या कासी ॥

(औ)

वेद में इड़ा तथा पिंगला के संगम पर सुषुम्ना में ध्यान करने का विधान मिलता है। भौंहों के बीच में; आज्ञाचक्र में इड़ा और पिंगला नाम की नाड़ियाँ मिलती हैं। इसी संगम पर सुषुम्ना नाड़ी भी है। इस स्थान पर ध्यान करना ही दृष्टियोग है—यही सन्तमत-साधना का एक मुख्य सोपान है। इसे अभिमुख ध्यान भी कहा जाता है। देखिये 'वेद-दर्शन-योग' का अभिमुख दृष्टियोग प्रकरण।

लेकिन वेद में इड़ा और पिंगला को क्रम से गंगा और यमुना कहा गया है। सन्तवाणी में भी यही बात है। दोनों का यह आलंकारिक नाम भी इस बात का प्रमाण है कि सन्त को बिना पढ़े-लिखे भी वेदवाणी का ज्ञान उनकी साधना की सफलता के कारण होता है। सन्त-साधना में ध्यान की अपूर्व महिमा है। सन्त कबीर साहब स्वयं कहते हैं :—

कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, माणिक लावै सोय।।
मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की, जा में वस्तु अनेक।।

वेद में भी ध्यान द्वारा मोक्ष-प्राप्ति की बात लिखी हुई है। नीचे कुछ ऋचाएँ तथा सन्तवाणियाँ इसका स्पष्टीकरण करने के लिये दी जाती हैं —

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया।।

ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ७५।५

महर्षि दयानन्दजी महाराज इस मन्त्र का अर्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ग्रन्थ के प्रामाण्याप्रामाण्य विषयक प्रकरण में लिखते हैं— ''इस मन्त्र में गङ्गा आदि नाम इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना, कूर्म और जठराग्नि नाड़ियों के हैं, उनमें योगाभ्यास से परमेश्वर की उपासना करने से मनुष्य लोग सब दुःखों से तर जाते हैं। क्योंकि उपासना नाड़ियों के ही द्वारा धारण की जाती है।''

ऋग्वेद के इसी 'इमं मे गंगे' आदि वाले सूक्त के अन्त में व्याख्या रूप से कई शाखाओं में नीचे लिखा मन्त्र मिलता है —

सितासिते सरिते यत्र सङ्गमे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥

अर्थात् जो ध्यानी लोग, जहाँ (सित) इड़ा और (असित) पिङ्गला–ये दोनों नाड़ियाँ मिलती हैं, उस संगम स्थान सुषुम्ना में स्नान करते हैं, वे योगी शरीर छोड़ने के पश्चात् अमृतत्व को भजते हैं।

गङ्गा और यमुना शब्दों का स्पष्टीकरण हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार मिलता है —

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
इडा पिङ्गलयोर्मध्ये बालरंडा च कुण्डली॥

अब सन्त कबीर का एक वचन सुनिये —

गङ्ग जमुन के अन्तरे, सहज सुन्न के घाट।
तहाँ कबीरे मठ किया, खोजत मुनि जन बाट॥

उसी को सन्त शिवनारायणजी इस भाँति कहते हैं —

सिपाही मन दूर खेलन मत जैये।
घर में ही गंगा घर में ही यमुना, तेहि बिच पैठ नहैये।

सन्त वचनों का वेद वचनों से साम्य है, इसके लिये दो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं। लेकिन प्रस्तुत पुस्तक वेद-दर्शन-योग में सैकड़ों उदाहरण ऐसे साम्य के मिलेंगे। यह तुलनात्मक अध्ययन जिज्ञासुओं को वेदवाणी के अध्ययन के लिये प्रेरणा देगा। यह पुस्तक पूज्य गुरुदेव के गम्भीर मनन और चिन्तन का फल है। इसकी रचना करके श्री स्वामीजी ने अध्यात्म-विद्या के प्रेमियों तथा संतमत के सत्संगियों का बड़ा उपकार किया है। हम सब ओर से पूज्य गुरुदेव के चरण-कमलों में श्रद्धा-निवेदन करते हैं तथा कृतज्ञता- ज्ञापन करते हैं।

विश्वानन्द
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

श्रावण पूर्णिमा २०१३ वि०
कोशी कॉलेज
खगड़िया (मुंगेर)

प्रकाशक की ओर से

प्रातः स्मरणीय अनन्त श्रीविभूषित सद्‌गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज प्रणीत 'वेद-दर्शन-योग' को प्रकाशकीय माध्यम से परिचय कराना, मानो पूषण (सूर्य) को प्रदीप द्वारा प्रदर्शित करने का प्रयास करना है। प्रस्तुत पुस्तक स्वयं देदीप्यमान होने के कारण अपना प्रदर्शन आप करती है; किन्तु पुस्तक-प्रकाशन के प्रसंग में विद्वानों में भूमिका, प्राक्कथन, प्रकाशकीय, दो शब्द आदि लिखने की जो परिपाटी चली आ रही है, उसी के रक्षणार्थ मुझे यहाँ दो शब्दों का लिखना आवश्यक हो गया, यद्यपि मैं कोई विद्वान नहीं, एक तुच्छ सत्संगी मात्र हूँ।

आबाल ब्रह्मचारी बाबा ने प्रव्रजित होकर लगातार ५२ वर्षों से सन्त साधना के माध्यम से जिस सत्य की अपरोक्षानुभूति की है, उसी का प्रतिपादन प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। इतने लम्बे अरसे से वेद, उपनिषद् एवं सन्तवाणियों का अध्ययन तथा मनन एवं उनके अन्तर्निहित निर्दिष्ट साधनाओं का अभ्यास करते हुए परमपूज्य सद्‌गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव मात्र सदाचार-समन्वित हो दृष्टियोग और शब्दयोग (नादानुसंधान) अर्थात् विन्दुध्यान और नादध्यान के द्वारा ब्रह्म-ज्योति और ब्रह्मनाद की उपलब्धि कर परम प्रभु सर्वेश्वर को उपलब्ध कर सकता है। इसी विषय का स्पष्टीकरण उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ में किया

है। साथ ही उन्होंने यह भी समझाने की भरपूर चेष्टा की है कि प्राचीन कालिक मुनि-ऋषियों से लेकर अर्वाचीन साधु-संतों तक की अध्यात्म-साधना पद्धति एक है। वेद-उपनिषदादि में वर्णित अध्यात्म- ज्ञान और कबीर, नानक, तुलसी प्रभृति आधुनिक सन्तों के व्यवहृत आत्मज्ञान में ऐक्य या पार्थक्य है ?— इस भ्रम के निवारणार्थ 'वेद- दर्शन-योग' का प्रणयन किया गया है। अथवा सीधे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक उपर्युक्त ऐक्य वा पार्थक्य के असमंजस को मिटाकर पूर्ण सामंजस्य की स्थापना करती है। प्रमाणार्थ—ऋग्वेद के निम्नलिखित युगल मंत्रों में ब्रह्मतेज (ब्रह्मज्योति) और ब्रह्मनाद का वर्णन मिलता है।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १०॥

सू० ६२, मंडल ३

अर्थात् —"जो परमेश्वर हमारी बुद्धियों को अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में प्रेरित करता है, उस सर्वोत्पादक प्रकाश-स्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वदाता परमेश्वर के उस अनुपम, सर्वश्रेष्ठ, पापों को भून डालने-वाले, समस्त कर्म-बन्धनों को भस्म करनेवाले तेज को धारण करें और उसी का ध्यान करें।" तथा —

शृण्व वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥

सू० ४१, मंडल ९

अर्थात् —आकाश में बिजलियाँ चमकती हैं और उस समय उस बलवान, पापशोधक का शब्द वृष्टि के समान सुन पड़ता है। साधक के मूर्धा स्थल में विद्युत की-सी कान्तियाँ व्यापती हैं, वह अनाहत पटह के समान गर्जन अनायास सुनता है। वह स्वच्छ पवित्र आत्मा का ही शब्द होता है।

उपनिषद् में भी परमात्मा से प्रार्थना है कि मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल–तमसो मा ज्योतिर्गमय। और मुक्तिकोपनिषद् में भगवान श्रीहनुमानजी को आदेश देते हैं —

बहुशास्त्रकथा कन्थारोमन्थेन वृथैव किम्।
अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन मारुते ज्योतिरान्तरम्॥६३॥

अर्थात्—बहुत-से शास्त्रों की कथाओं को मथने से क्या फल ? हे हनुमान! अत्यन्त यत्नवान होकर अपनी अन्तर्ज्योति की खोज करो।

भगवान बुद्ध कहते हैं —

अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ। —धम्मपद।

अर्थात् अन्धकार से घिरे तुम प्रकाश की खोज क्यों नहीं करते ? इसी अन्तःप्रकाश को सन्त कबीर साहब, 'गुरु दियना' और 'ब्रह्म-अग्नि' की संज्ञा देते हैं और कहते हैं —

गुरु दियना बारु रे, यह अन्धकूप संसार॥

अपने घट दियना बारु रे।
नाम का तेल सुरत की बाती, ब्रह्मअगिन उद्‌गारु रे॥

गुरु नानकदेवजी कहते हैं —

अन्तर जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा।

आरति संग सतगुरु के कीजै। अंतर जोत होत लख लीजै ।।

(तुलसी साहब)

इस नगरी में तिमिर समाना, भूल भरम हर बार।
खोज करो अन्तर उजियारी, छोड़ चलो नौ द्वार ।।

(राधास्वामी साहब)

और महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं —

खोज करो अन्तर उजियारी, दृष्टिवान कोइ देखा है।

....

निसि दिन सुरत अधर पर कर कर, अन्धकार फट जाता है ।।

इत्यादि।

उपर्युक्त उपनिषद् एवं सन्तवाणियों में वर्णित प्रक्रियाओं के नाम ही दृष्टियोग, शाम्भवी मुद्रा और वैष्णवी मुद्रा आदि हैं। और नादानुसन्धान-विषयक विशेष अभिज्ञता के लिए वेदों में जो आदेश है, उसका संक्षिप्त वर्णन इसी पुस्तक के ज्योति और अन्तर्नाद, आत्मा की सत्यस्वरूप प्रिय वाणी तथा नाद प्रकरण में पढ़कर जानिये। नादविन्दूपनिषद् में नादानुसन्धान वा नादध्यान का वर्णन इस प्रकार है —

ब्रह्मप्रणवसंधानं नादो ज्योतिर्मयः शिवः।
स्वयमाविर्भवेदात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ।।३०।।
सदा नादानुसन्धानात्संक्षीणा वासना तु या।
निरंजने विलीयते मनोवायू न संशयः ।।४९।।

द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

(ब्रह्मविन्दूपनिषद्)

भगवान श्रीशंकराचार्यजी नादानुसन्धान की प्रार्थना करते हुए कहते हैं —

नादानुसन्धान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महे तत्त्वपदं लयानाम् ।
भवत्प्रसादात् पवनेन साकं विलीयते विष्णुपदे मनो मे ॥

(योगतारावलि)

साधो शब्द साधना कीजै ।
जेहि शब्द से प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै ॥
शब्द गह्यो जिव संशय नाहीं, साहब भयो तेरे संग ॥

(कबीर साहब)

पंच शब्द तहँ पूरन नाद । अनहद बाजै अचरज विसमाद ।

(गुरु नानक)

इसी नादब्रह्म को शब्दब्रह्म कहकर सन्त सुन्दरदासजी इस प्रकार वर्णन करते हैं —

शब्दब्रह्म परिब्रह्म भली विधि जानिये ।
पाँच तत्त्व गुण तीन मृषा करि मानिये ॥

इसी भाँति पूज्य महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने इस पुस्तक में वेद, उपनिषद् एवं सन्त-साधना का इतने सरल ढंग से सामंजस्य कर दिखलाया है, जिससे कि सामान्य ज्ञान प्राप्त जन को भी सहज ही बोधगम्य हो सके ।

एक जमाना था जब कि 'वेदज्ञान' अति स्वल्प संख्यक जन तक ही सीमित था। सर्वसाधारण इस ज्ञान से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। यहाँ तक कि वे 'वेदग्रन्थ' के दर्शन से भी सुदूर थे।

अतएव आवश्यकता हुई कि वेदान्तर्गत निहित निगूढ़ तत्त्व-ज्ञान सर्वसाधारण तक पहुँचाया जाय और सभी इस ज्ञान को सुलभता से प्राप्त कर उससे यथोचित लाभान्वित हों। इसलिये परमपूज्य सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने चारों वेदों का स्वयं अध्ययन एवं मनन कर चारों वेदों से (ऋग्वेद के ५३ मन्त्र, सामवेद के २१ मन्त्र, यजुर्वेद के १७ मन्त्र और अथर्ववेद के ९ मन्त्र, कुल १००) सौ मन्त्रों का चयन कर सर्वसाधारण के उपकारार्थ जगत के समक्ष रखा।

जिस प्रकार राजहंस, नीर-क्षीर को पृथक्-पृथक् कर केवल क्षीर को ग्रहण करता है, ठीक उसी भाँति परमहंस महर्षिजी महाराज ने चारों वेदों से ब्रह्म, जीव, प्रकृति, योग, ध्यान, भक्ति, सत्संग, सदाचार प्रभृति दुग्ध को ग्रहण कर जनता-जनार्दन के लाभार्थ वेद-दर्शन-योग रूप पात्र में रख दिया है।

प्रस्तुत पुस्तक में वेद-मन्त्रों के सहित उनके भाषा-भाष्य भी दे दिये गये हैं*, जिन पर परम पूज्य महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने विशेष कृपा कर स्वानुभूति-टिप्पणी लिखकर इसे और भी चमत्कृत कर दिया है।

---

*इस पुस्तक में संगृहीत वेद-मन्त्रों के भाषा-भाष्यकार पं० श्री जयदेव शर्म्मा, विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ (आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर) हैं।

'वेद-दर्शन-योग' का प्रकाशन करते हुए मैं अपने को परम सौभाग्यशाली मानता हूँ। परमाराध्य परम पूज्य श्री सद्गुरु महाराज जी की अहैतुकी असीम अनुकम्पा का ही यह प्रत्यक्ष फल है कि मुझे अध्यात्म-ज्ञान की प्यास लगी और आज दस वर्षों से उनकी छत्रच्छाया में रहकर वेद, उपनिषद्, सन्तवाणी तथा उनकी निज अमृतवाणी के पान करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

अन्त में, इस पुस्तक के प्रकाशन-कार्य में जिन सज्जनों से मुझे जैसी सहायता मिली है, वह मेरा हृदय जानता है। उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूँ। साथ ही उनके नामोद्धृत नहीं कर, हृदय से अनेकानेक मूक धन्यवाद देता हूँ।

पूज्यपाद महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के सान्निध्य से मुझे अपार लाभ हो रहा है। एतदर्थ आशा ही नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो इस पुस्तक को अपनाएँगे, वे अपने जीवन को समुज्ज्वल बनाते हुए परम लाभान्वित होंगे।

रक्षाबन्धन, २०१३ वि०। गुरुचरणाश्रित —

सन्तसेवी

प्राक्कथन

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के श्रीचरणों में सत्संग का शुभ अवसर मुझे कम प्राप्त हो सका है, यद्यपि महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के व्यक्तित्व तथा उनकी साधना के सम्बन्ध में मेरे प्रिय शिष्य तथा मित्र प्रोफेसर विश्वानन्दजी से चिरकाल से चर्चा होती आ रही थी। जो थोड़े-से क्षण मैंने महषिजी महाराज के सान्निध्य में व्यतीत किये, वे मेरे लिये महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि उनकी मुखाकृति की दीप्ति स्वतः ही भक्तों के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। उनके मुखमण्डल की आभा उनके अन्तर्ज्ञान तथा चिरसाधना का प्रतीक है। महर्षिजी की प्रस्तुत रचना—'वेद-दर्शन-योग'—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के कुछ प्रमुख मंत्रों को हमारे सामने रखती है और उनमें निहित तत्त्वज्ञान का विश्लेषण करती है। वैसे तो मंत्रों के जो अर्थ दिये गये हैं, वे श्री जयदेवजी शर्मा विद्यालंकार के भाषा-भाष्य से उद्धृत हैं, किन्तु स्थान-स्थान पर श्रीस्वामीजी ने अन्य ग्रन्थों तथा प्रमुख सन्तों की वाणियों के द्वारा उन्हें सम्पुष्ट किया है और यथास्थान अपनी व्यक्तिगत टिप्पणी भी दी है।

विषय-सूची के देखने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि महर्षिजी महाराज ने वेदों की अनुपम तथा अथाह जल-राशि में से केवल

कुछ थोड़े-से मोती निकालकर उन्हें हमारे सामने उपस्थित किया है। हमारी समझ में विषयों का चयन किसी पूर्व निश्चित सिद्धान्त के आधार पर अथवा सुपरिभाषित परिधि के अन्दर नहीं हुआ है। सत्संग के सिलसिले में और जनसाधारण के आध्यात्मिक हित-साधन की दृष्टि से कुछ उपयुक्त विषय उसी प्रकार चुन लिये गये हैं, जिस प्रकार एक भ्रमर कमनीय कुसुमकलित विस्तृत उपवन में स्वच्छन्द विचरण करता हुआ यदृच्छा से जहाँ-तहाँ फूलों पर बैठ जाता है और उनसे मकरन्द-विन्दुओं की मधुकरी का अर्जन कर लिया करता है। यही कारण है कि जहाँ प्रस्तुत संकलन में ब्रह्म, मोक्ष, योग, जीव, सृष्टि आदि दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विषयों को स्थान मिला है, वहाँ साथ-ही-साथ सत्संग और गोवध-निषेध आदि आचार-व्यवहार के विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है।

फिर भी सम्भवतः यह कहा जा सकता है कि महर्षिजी ने दृष्टियोग-साधन तथा नादानुसंधान को इस संकलन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय बनाया है। यद्यपि मैं इन विषयों पर प्रामाणिक रूप से अपने विचार व्यक्त करने का अधिकारी नहीं हूँ , फिर भी मेरी समझ में यह उपयुक्त होगा कि जन-साधारण को इन विषयों का कुछ प्रारंभिक ज्ञान हो जाय, ताकि वह वेदमंत्रों की गहराई में जाने की चेष्टा करे। कवि ने ठीक ही कहा है कि—

जिन ढूँढा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ ।
मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ ॥

हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि आज के इस तथाकथित वैज्ञानिक तथा भौतिकवादी युग में तत्त्वज्ञान के गहरे पानी में पैठने को कौन कहे, हममें से अधिकांश व्यक्ति किनारे बैठने का भी अभ्यास नहीं करते, बल्कि यों कहिये कि उस दिशा में जाने की भी प्रवृत्ति उन्हें नहीं होती; वे तो विपरीत दिशा में ही बढ़ते हुए दीख पड़ते हैं।

जहाँ तक हमने योग तथा नाद के सिद्धान्त को समझने की चेष्टा की है, हम उसे संक्षेप में यहाँ रखना चाहेंगे। योग को हम दो मुख्य कोटियों में विभक्त कर सकते हैं:- पिपीलकयोग और विहंगमयोग। पिपीलकयोग का ही दूसरा नाम हठयोग है और विहंगमयोग का नामान्तर ध्यानयोग है। पिपीलक कहते हैं चींटी को। जिस तरह जमीन पर रहनेवाली चींटी किसी मीठे पके फलोंवाले पेड़ पर धीरे-धीरे चढ़ती है और फलों के रस का कुछ देर तक मधुर-मधुर आस्वादन करके फिर जमीन पर उतर जाती है, उसी प्रकार एक हठयोगी योग की कुछ प्रक्रियाओं के द्वारा कुछ देर तक अपनी प्राणवायु का नियंत्रण करके अपनी चेतना को ब्रह्मज्योति में लीन कर देता है और आनन्द का आस्वादन करता है, किन्तु उन प्रक्रियाओं के अन्त होते-होते उसे अपनी उच्चतम भाव-भूमि अथवा मधुमती भूमिका को छोड़कर पुनः पूर्ववत् मर्त्यलोक और उसकी सामान्य भाव-भूमि पर उतर आना पड़ता है। विहंगमयोग पिपीलकयोग से भिन्न है। विहंगम कहते हैं पक्षी को। जिस तरह एक पक्षी सदा-सर्वदा पेड़ की ऊँचाई पर रहा करता है और वहीं से उड़-उड़कर अनन्त

विस्तृत व्योम-वितान की सैर करता है तथा मनमाने मधुर फलों और उनके रसों का आस्वादन करता है, वह कभी उच्च भाव-भूमि से नीचे नहीं उतरता; उसी प्रकार विहङ्गम-योगी अथवा ध्यानयोगी अपनी साधना तथा समाधि के लिये किन्हीं विशेष शारीरिक निरोधों एवं यौगिक प्रक्रियाओं पर ही निर्भर नहीं रहता, वह तो ध्यान की सतत शाश्वत मादकता एवं ब्रह्ममिलन के परमानन्द की अजस्रधारा में डूबता-उतराता रहता है और शून्य गगन में स्वच्छन्द विहार करता हुआ परमानन्द-रूपी अमृत का छक-छककर पान करता रहता है। सच पूछिये तो कबीर आदि सन्तों ने भी जितना अधिक महत्त्व ध्यानयोग को दिया है, उतना हठयोग को नहीं, यद्यपि हठयोग की प्रक्रियाएँ ध्यानयोग की सिद्धि के लिये उपयोगी हैं। केवल अन्तर यह है कि ध्यान मुख्य है और शारीरिक प्रक्रियाएँ आनुषंगिक। इसीलिये कहीं-कहीं तो निर्गुण सन्तों ने प्राणायाम आदि निरी शारीरिक नियंत्रण-परक क्रियाओं का खण्डन किया है।

योगियों ने साधना की दृष्टि से इस शरीर को विश्व का प्रतीक जानकर दो भागों में विभक्त किया है—पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड। उन्होंने इसमें छः चक्रों तथा सहस्त्रदल कमल का भी वर्णन किया है। इन चक्रों के नाम हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र। आज्ञाचक्र से परे है सहस्त्रदल कमल। प्रथम पाँच चक्र तो पिण्ड में अर्थात् शरीर में कण्ठ तक नीचे के हिस्से में अवस्थित हैं; किन्तु अन्तिम अर्थात् आज्ञाचक्र का आधा अंश पिण्ड में तथा आधा अंश ब्रह्माण्ड में है। साधकों ने इसकी कल्पना ही नहीं

की है—अपितु इसका अभ्यास कर साक्षात् भी किया है। कुण्डलिनी जो विकृतिरूपिणी प्रकृति तथा बन्धनरूपिणी माया का प्रतीक है, सामान्यतः सबसे निचले चक्र अर्थात् मूलाधार में अवस्थित रहा करती है। फलतः हम सभी अपने शरीर के निचले हिस्से तथा उसमें केन्द्रित वासनाओं में लिप्त रहा करते हैं। यदि हमें साधना-पथ का पथिक होना है तो मूलाधार में सोयी हुई कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत् करना होगा और उसकी गति को ऊर्ध्वमुख करना होगा, जिससे वह सभी चक्रों का भेदन करती हुई अर्थात् प्रकृति और माया के आवरणजाल को काटती हुई मर्त्यलोक से उठकर ब्रह्माण्डस्थित आज्ञाचक्र में पहुँचे; और अभ्यासी उससे भी ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में सहस्त्रदल कमल में विराजमान होकर ब्रह्म तथा उसकी ज्योति तथा अनवरत होनेवाले अनाहत नाद के साथ एकाकार अथवा तादात्म्य-भाव सम्पन्न कर सके। अत्यन्त सरल शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जीवात्मा जबतक प्रकृति और वासनाओं के निम्न स्तर पर रहता है तबतक वह ब्रह्म से पृथक् और परे रहता है। वह अनवरत साधना के द्वारा वासना और माया पर विजय प्राप्त करके ब्रह्म के इतना निकट और इतना सदृश हो सकता है कि समाधि की मधुमती भूमिका में वह अपना अस्तित्व ही भूल जाय और अनाहत नाद अथवा शब्द बनकर बोल उठे अहं ब्रह्मास्मि।

सन्तमत अथवा योगमार्ग में 'अनाहत नाद' अथवा 'शब्द' बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। 'अनाहत' का अर्थ है बिना आघात अथवा चोट के उत्पन्न। प्रायः जो शब्द अथवा ध्वनि हम सुना करते हैं या

स्वयं अपने कण्ठ से निकालते हैं, वह आघातजन्य होती है, चाहे वह आघात किसी द्रव्य का अन्य द्रव्य के साथ संघर्ष का परिणाम हो अथवा शरीर के किसी अंग के साथ वायु के सम्पर्क तथा प्रस्पन्दन का परिणाम हो। किन्तु जिस नाद अथवा शब्द की चर्चा साधना के क्षेत्र में हुई है, वह तो मानो शून्य गगन में बिना किसी आघात के उत्पन्न होता है, और उसे केवल योगी ही अपने अन्तर में सुन सकता है, इतर नहीं। अत्यन्त सरल शब्दों में हम यह कहेंगे कि हम शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि के लिये अपने से इतर किन्हीं अन्य पदार्थों की अपेक्षा रखते हैं। अतः हमारा समग्र सुख तथा आनन्द उन अन्य पदार्थों के आश्रित रहा करता है। अर्थात् हम आत्माश्रित न होकर सदा पराश्रित रहा करते हैं और हम जानते ही हैं कि 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।' योगी अथवा साधक भी सुख तथा आनन्द की आकांक्षा करता है—और करे क्यों नहीं, जब ब्रह्म ही आनन्दमय है—किन्तु वह यह चाहता है कि समग्र रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि उसे उसके अन्तःप्रदेश में ही मिल जाय; उसकी दृष्टि अपने से बाहर न देखकर सदा अपने ही अन्दर देखा करे, उसकी रसना बाहर के फल-मूल और मिष्टान्न की लालसा त्यागकर जीव-ब्रह्म-मधुर मिलन-जन्य रस का आस्वादन करे, उसकी कान उसकी अन्तरात्मा में उत्थित सतत मधुर ओ३म् अथवा सोहं ध्वनि को सुना करें। यही ध्वनि योगी का परम लक्ष्य है; इसी का दूसरा नाम है—शब्दब्रह्म।

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने चारों वेदों में से चुने हुए कुछ

मन्त्रों को इस दृष्टि से भी उपस्थित किया है कि इस अनाहत नाद अथवा शब्द को वेदों के पश्चाद्वर्ती युग अथवा वेदों से इतर साहित्य की वस्तु न मान लें, बल्कि यह समझें कि जब से, अर्थात् अनादि काल से वेद हैं, तभी से हमारे ऋषि-मुनियों ने योग-साधना की सरणि का अनुसरण किया है। कभी-कभी इस प्रकार की विचारधारा व्यक्त की जाती है कि योग का सूत्रपात पातंजल-दर्शन से हुआ और निर्गुण-भावना तथा अनाहत नाद आदि का प्रचार कबीर आदि सन्तों के द्वारा हुआ। यह विचार-धारा सर्वांशतः भ्रान्त है, जैसा कि हम महर्षिजी महाराज के प्रस्तुत संकलन और उसमें प्रतिपादित तत्त्वज्ञान-विश्लेषण को हृदयंगम करके समझ सकेंगे।

हम भगवान से प्रार्थना करेंगे कि महर्षिजी महाराज अपने भक्तों तथा अध्यात्म-प्रेमी जनता के हित के लिये भविष्य में इस प्रकार की अनेक रचनाएँ प्रतिपादित करें तथा उन्हें सुलभ बनावें।

धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, शास्त्री

२१-११-१९५५ ई०

एम.ए., पी-एच.डी, ए.आई.ई. (लन्दन)

प्राचार्य, ट्रेनिंग कॉलेज, भागलपुर।

भूमिका

जम्बूद्वीपान्तर्गत भरतखण्ड-निवासी आर्यों के धर्मग्रन्थ का नाम वेद है। यह ग्रन्थ इतना प्राचीन है कि संसार का कोई भी ग्रन्थ इसकी प्राचीनता की बराबरी का नहीं सुना जाता है। भारत का यह अति प्रतिष्ठित धर्मग्रन्थ चार नामों से विख्यात है - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद; ये ही चार वेद कहकर प्रसिद्ध हैं। जो पवित्र भावात्मक विचार इन चारों में वा इनमें से किसी एक में भी नहीं मिले, भारतीय आर्य उसे धर्ममय नहीं मानते। वेदों के ज्ञाता पहले भी कम थे और अब भी कम हैं। ये चारों वेद-संहिताएँ बहुत भव्य और अति विशाल वाङ्मय हैं। पुस्तक रूप में इनका दर्शन भी बहुत लोगों को पहले भी अति दुर्लभ था और अब भी उनको अति दुर्लभ नहीं, तो दुर्लभ अवश्य है। आर्यसमाज के संस्थापक परमपूज्य वेद-विद्या में अग्रणी महर्षिवर स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज की जनसमूह पर अति अनुकम्पा से ही वेद पुस्तकों का दर्शन अति दुर्लभ से केवल दुर्लभ होकर है। अतएव उन अति श्रद्धेय, अति पूज्य महर्षि को मैं नतमस्तक होकर कोटि-कोटि दण्ड-प्रणाम करता हूँ। आर्यसमाज के उन विद्वान और धनवान महाशयों को भी, जिनके प्रयास और धनव्यय द्वारा चारों वेद-संहिताएँ भारती भाषा में अनुवाद- सहित मुद्रित होकर प्रकाशित हुईं और मूल्य देने पर सबको उपलब्ध हैं, अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। लड़कपन में ही मेरी रुचि भगवद्भक्ति, ज्ञान

और ध्यान की ओर हो गई थी। हो सकता है कि वह मेरे पूर्व जन्म के संस्कार के कारण हो; क्योंकि लड़कपन में मुझे उस प्रकार का सङ्ग नहीं था। मैं उपर्युक्त विषयों का खोजी विद्याध्ययनकाल से ही था। विद्यालय छोड़कर वैरागी भेष धर मैं कथित विषयों का विशेष खोजी बना। जहाँ-तहाँ स्वल्प भ्रमण कर अन्वेषण करने पर कुछ लोगों से विदित हुआ कि कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि सन्तों का धर्मज्ञान-विचार वेदज्ञान से ऊँचा है और इन सन्तों के अनुयायियों के अतिरिक्त दूसरे वेद विद्यावाले महाशयों से विदित हुआ कि उपर्युक्त सन्तों का ज्ञान वेदानुकूल नहीं है और श्रद्धा-योग्य नहीं है। मैं सन्तों के ज्ञान को अपना चुका था और चाहता था कि वेदों का भारती-भाषा में अनुवाद-सहित मूलग्रन्थ भी मिले तो निज से पढ़कर जानूँ कि विदित किये गये दोनों पक्षों में से किस पक्ष का कहना यथार्थ है। मैं सन्तों की वाणी में उनके ज्ञान की उत्कृष्टता का बोध करता और सोचता कि यह परमोत्कृष्ट ज्ञान क्या वेद में नहीं है ? क्या वेद इस ज्ञान से हीन है ? और यह परमोत्कृष्ट ज्ञान, श्रद्धा करने योग्य क्यों नहीं है ? अपने इन प्रश्नों के उत्तर के लिये मैं यही बोध करता कि मुझको चाहिये कि मैं स्वयं वेदों का दर्शन करूँ और उनके अर्थों को पढ़ूँ। पहले मुझको लोकमान्य बालगंगाधर तिलक महोदयजी का 'गीता-रहस्य' पढ़ने को मिला, जिसमें लिखा पाया— 'सारे मोक्षधर्म के मूलभूत अध्यात्म-ज्ञान की परम्परा हमारे यहाँ उपनिषदों से लगाकर ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास, कबीरदास, सूरदास

इत्यादि आधुनिक साधु-पुरुषों तक अव्याहत चली आ रही है।' (पृष्ठ २५०)। यह पढ़कर मैं बड़ा प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ। फिर मेरे परम प्रेमी और पूर्ण विश्वासपात्र स्वामी आत्मारामजी (पूर्व नाम पंडित वैदेही शरण दूबेजी) ने कुछ वेद-मन्त्रों को भाषा-अर्थ-सहित वैदिक विहंगम-योग' के नाम से छपवाया। इस छोटी अच्छी पुस्तिका को मैंने पढ़ा। मेरे एक मित्र ने मुझे ३२ उपनिषदों के अँगरेजी अनुवाद का एक ग्रन्थ दिया। कठ, केन आदि कई उपनिषदों का एक संकलन बंगला अनुवाद-सहित मिला, भारती भाषा में अनुवाद-सहित छान्दोग्यादि कई उपनिषद् मेरे परम प्यारे श्री बाबू बुद्धू कुँवरजी सत्संगी अध्यापक महाशय ने दी और ११२ उपनिषदों का एक समुच्चय केवल मूल संस्कृत में मैंने मुरादाबाद निवासी पूज्यमान पण्डित ज्वालादत्तजी षट्शास्त्री महोदय जी के परामर्शानुसार हरिद्वार में खरीद लिया। इन सबको मैंने पढ़ डाला और इन सबमें से उत्तमोत्तम ज्ञान-ध्यान की बातें संकलन कर उन्हें 'सत्संग-योग' नाम की पुस्तक में छपवा दिया, जिसका प्रथम प्रकाशन सन् १९४० ई० में हुआ।

कबीर पंथ के एक विद्वान महन्त महोदयजी का लेख 'कल्याण पत्र' के विक्रमी सम्वत् १९९३ के विशेषाङ्क 'वेदान्ताङ्क' में निकला, जिसका कुछ अंश निम्नलिखित है — (लेखक—महन्त श्रीरामस्वरूप दासजी, गुरु शान्ति साहब) —'महात्मा कबीरदास एक बहुत बड़े लोक-शिक्षक थे। उन्होंने मनुष्य-समाज को सत्य-धर्म की शिक्षा देने

की जीवन भर चेष्टा की। और सत्य धर्म वेदान्त ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। फिर भी कबीर साहित्य से अनभिज्ञ कितने ही लोगों का यह कहना है कि कबीर साहब ने वेद और वेदान्त को नहीं माना है; परन्तु ऐसा कहना अपनी अनभिज्ञता का परिचय देने के सिवा और कुछ नहीं। कबीर साहब एक स्थल में कहते हैं—'वेद पुराण कहो किन झूँठा, झूँठा जो न विचारा।' इन सबको पढ़कर मैं इस विश्वास पर पहुँचा कि कथित सन्तगण का ज्ञान वेदबाह्य और अश्रद्धा करने योग्य नहीं है। 'इन सन्तों ने वेदों से भी ऊँचे ज्ञान का कथन कर संसार में प्रचार किया है'—यह बात विशेष अनुसन्धान नहीं करने के कारण ही कही गई है। यथार्थ में सन्तों का ज्ञान वेदों में है ही। इस परिणाम पर आने पर भी मैं उत्सुक था कि मैं चारों वेदों का भारती भाषा में अनुवाद-सहित दर्शन करूँ और उन्हें पढ़ूँ। अन्त में उपर्युक्त अपने परम प्रिय स्वामी आत्मारामजी के कहने पर मैंने अजमेर निवासी आर्य पण्डित जयदेवजी शर्मा, विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ महोदय के पास से उन्हीं के द्वारा चारों वेद-संहिताओं के किये हुए भाषा-भाष्य को मूल सहित मँगाया। ये चौदह जिल्दों में हैं। मैं इन सबको पढ़ गया और इनमें से जो संग्रह किया, वही 'वेद-दर्शन-योग' के नाम से प्रकाशित किया गया है।

इस नाम में 'दर्शन' शब्द का वही अर्थ है, जो श्रीमद्भगवद्-गीता के अध्याय ११ के 'विश्वरूप-दर्शन-योग' में 'दर्शन' शब्द का है।

वेद-संहिताओं के उपर्युक्त भाष्य को ही पढ़कर मैंने 'वेद-दर्शन-योग में टिप्पणियाँ लिखी हैं। इन्हें लिखकर वेद और सन्तों के ज्ञान के विषय में मैं उसी परिणाम पर अति दृढ़ता और विशेष प्रसन्नता से हूँ, जिस परिणाम पर आने के विषय में मैं पहले लिख चुका हूँ।

'वेद-दर्शन-योग' की पाण्डुलिपि तैयार करने और छपवाने में श्री बाबू उदितनारायण चौधरीजी, प्रधानाध्यापक, माध्यमिक विद्यालय, झण्डापुर (भागलपुर), श्रीमहावीरजी 'संतसेवी' तथा डॉक्टर उपेन्द्रनारायण वर्म्माजी, बरौनी (मुंगेर) ने विशेष प्रयास किया है। इनके अतिरिक्त अन्यान्य सत्संगी महाशयों ने भी प्रतिलिपि तैयार करने में प्रयास किया है। अतः मैं इन सब धर्मप्रेमी महाशयों को हार्दिक धन्यवाद और शुभाशीर्वाद देता हूँ। साथ ही मैं श्रीमान् डॉक्टर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, ए०आइ०ई० (लन्दन), प्राचार्य, ट्रेनिंग कॉलेज, भागलपुर को नहीं भूल सकता, जिन्होंने 'वेद-दर्शन-योग' की पाण्डुलिपि को निजी प्रसन्नता से पढ़ने और उस पर अपना प्राक्कथन लिखने के अतिरिक्त पुस्तक छपने के समय फाइनल प्रूफ देखने का भी कष्ट उठाया है, मैं इन्हें भी अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ।

सत्संग-सेवक
'मेँहीँ'

प्रकाशकीय

'वेद-दर्शन-योग' के अष्टम संस्करण को प्रकाशित करते हमें अपार हर्ष हो रहा है। कई वर्षों से वेद-दर्शन-योग के सप्तम संस्करण के लिए पाठकों का आग्रह प्राप्त हो रहा था। सप्तम संस्करण में जितनी प्रतियाँ प्रकाशित की थीं, प्रेमी पाठकों ने देखते-देखते सभी को अपनाकर हमारे उत्साह को बढ़ाया और अब यह अष्टम संस्करण आपलोगों के समक्ष है।

प्रथम संस्करण में सद्‌गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने इस विचार से अपनी विस्तृत टिप्पणियाँ नहीं दी थीं, चूँकि वे अपना भाव स्वरचित सत्संग-योग, रामचरितमानस-सार सटीक, सत्संग-सुधा, विनय-पत्रिका-सार सटीक तथा श्रीगीता-योग-प्रकाश आदि ग्रन्थों में व्यक्त कर चुके थे और उन्हें विश्वास था कि जिज्ञासु पाठक वेद-दर्शन-योग को विशेष रूप से हृदयंगम करने के लिये उपर्युक्त ग्रन्थों का सिंहावलोकन कर लेंगे; परन्तु अखिल भारतीय संतमत-सत्संग-प्रकाशन समिति के विशेष अनुरोध तथा प्रथम संस्करण के प्राक्कथन के लेखक स्वर्गीय डॉक्टर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारीजी के सुझाव के अनुसार सद्‌गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने अपनी आवश्यक टिप्पणियों को परिवर्द्धित किया और प्रकाशन समिति को पूर्ण विश्वास है कि अब प्रेमी पाठकों को वेद-दर्शन-योग को अच्छी तरह समझने में विशेष कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा।

वेद-दर्शन-योग की उपयोगिता दिनानुदिन बढ़ती जा रही है, चूँकि सभी मत के अध्यात्मवादियों ने इस पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कतिपय प्रमुख लेखकों की सम्मतियाँ भी इस ग्रन्थ के साथ प्रकाशित की जा रही हैं।

यह संस्करण शुद्ध एवं मुद्रण कला की सुन्दरता से सुसज्जित होकर आपके सामने है।

प्रकाशक

फरवरी, २०१६ ई० अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग-प्रकाशन

महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर

सम्मति

सन्तमत-उद्गम की ओर

श्री पं० बिहारीलाल जीशास्त्री, बरेली ।

[सन्तमत का भारतीय जन-जीवन में व्यापक प्रचार है । कबीर और गोरख-पन्थी सन्तों ने अलख की ज्योति जगायी है । उनकी विचारधारा का मूल वेद है । इस तत्त्व का प्रतिपादन प्रसिद्ध महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने अपनी 'वेद-दर्शन-योग' पुस्तक में किया । इस कृति में योग की मूल प्रेरणा और निराकार ब्रह्म के स्वरूप का सन्तमत और वेद की दृष्टि से विवेचन किया गया है । श्री शास्त्रीजी ने उसी की चर्चा प्रस्तुत लेख में की है ।

सम्पादक — साप्ताहिक 'आर्य-मित्र']

सन्तमत, जिसके प्रवर्त्तक और जोरदार पोषक महात्मा कबीर, गुरु नानकदेव, महात्मा दादू दयाल, दरिया साहब आदि माने जाते हैं, नया मत नहीं है, किन्तु योग की एक विशेष साधना मात्र है । जो इतनी ही सनातन है कि जितना आर्य-धर्म प्राचीन है । इसके पृथक्त्व का कारण यह हुआ कि वेदों को मीमांसकों ने सूत्र और ब्राह्मणों की विधियों का पालक एवं बोलने मात्र की वस्तु मान ली और सन्तलोग वेदादि शास्त्र पढ़े नहीं थे ।

'भूतं भव्यं भविष्यंच सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति' की घोषणा करनेवाले लोग इस गूढ़ ज्ञान, जिसके वर्णन वेदोपनिषदों में बहुतायत से भरे पड़े

हैं, को भूला बैठे। आध्यात्मिकता के इस रहस्य की उपेक्षा करने लगे। और सन्त इसे नयी खोज और वेद से अलग मान बैठे। एक बड़ी खाई दोनों के बीच में बन गयी। कहीं अपने वचनों में सन्तलोग वेदों को हीन भी कह गये। पर अब जब वेदों की हिन्दी टीकाएँ सुलभ हो गयीं और वेद सबके हाथों तक पहुँचे तो सन्तों ने भी देखा कि अन्य सब सत्य विद्याओं के समान इस गूढ़ ज्ञान का उद्‌गम भी वेद भगवान ही हैं! हमारे सामने महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज की लिखी पुस्तक 'वेद-दर्शन-योग' है। महर्षिजी ने अनेक वेद मन्त्र प्रस्तुत करके दिखाया है कि 'नाद-योग' अथवा 'शब्द-योग' सनातन है। ऋषियों द्वारा आविष्कृत और वेदोपदिष्ट है। पुस्तक में वेद-मंत्रों के साथ-साथ महर्षिजी ने संत कबीर, गुरु नानक आदि सन्तों के वचनों की संगति लगाकर विषय को समझाने के लिये बड़ी सुगमता कर दी है। सन्तमत और वेद-मत के बीच जो खाई थी, उसे महर्षिजी ने 'वेद-दर्शन-योग' लिखकर पाट दिया है।

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज बिहार प्रान्त में विराजते हैं। सैकड़ों व्यक्ति सनातनधर्मी और आर्य-समाजी इनसे नादयोग का तत्त्व सीखकर अभ्यास करते हैं। संत कबीर तथा गुरु नानकदेव की तरह वा राधा-स्वामियों की तरह इन्होंने अपना सम्प्रदाय या मत खड़ा नहीं किया है। केवल बाह्यमुखी भौतिकवादी जनता को अभ्यन्तर्मुखी करके अध्यात्म की ओर ले आना ही इनका उद्देश्य है।

महर्षिजी की रचित कई पुस्तकें हमें खगड़िया कॉलेज के प्रोफेसर श्रीविश्वानन्दजी ने दीं, जिनमें उपर्युक्त पुस्तक 'वेद-दर्शन- योग'

भी है। श्रीविश्वानन्दजी जन्मना आर्यसमाजी हैं और आर्य- समाज के अच्छे कार्यकर्त्ता भी। ऐसे ही अनेक आर्यसमाजी महर्षि मेँहीँ परमहंसजी के सहारे अन्तर्मुखी हो रहे हैं। वेद भगवान स्वयं स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं —

प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽअन्तर जायमानो बहुधाविजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः तस्मिन्हतस्थुर्भुवनानि विश्वा ।।

प्रजा का स्वामी गर्भ में अन्दर ही विचर रहा है। बहुधा प्रकट भी होता है। पर उसके प्रकट होने को योगी ही देखते हैं, उसमें सब भुवन स्थित हैं।

इस मन्त्र में चार वाक्य हैं। प्रथम वाक्य में उस प्रभु की सर्वव्यापकता बताई। दूसरे में यह बताया कि यह बात केवल थोथा अन्धविश्वास ही नहीं है, वह गुप्त तत्त्व अनुभूति के योग्य है। तीसरे वाक्य ने अनुभव करने की योग्यता बतायी कि उसका अनुभवात्मक प्रत्यक्ष योगी ही कर सकते हैं। बिना अन्तर्दृष्टि हुए उस आनन्दात्मक तत्त्व का साक्षात् नहीं हो सकता। सगुणोपासक सन्त सूरदासजी के मत से भी वह तत्त्व 'मन बानी को अगम अगोचर' है। इन्द्रियातीत उस ब्रह्म को बहिर्वृत्ति मन कैसे जान सकता है ? उपनिषद् कहती है —

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्यतन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।।

अर्थ —जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय तथा रसहीन, नित्य और गन्ध-रहित है, जो अनादि, अनन्त, महत्तत्त्व से भी पर और

ध्रुव (निश्चल) है, उस आत्मतत्त्व को जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छूट जाता है। उस परम सूक्ष्म तत्त्व तक 'सुरत' या वृत्ति को ले जाना ही सन्तों की साधना का उद्देश्य है। सुरत भी वहाँ जाकर शून्य में समा जाती है। उसकी भी वहाँ पहुँच नहीं। केवल आत्मतत्त्व ही उस परमात्म-तत्त्व का अनुभव करता है। इस गूढ़ तत्त्व तक पहुँचने की डोरी है नाद (शब्द) या 'ध्वनि', वह शब्द नहीं जो वैखरी वाणी के हैं। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती — इन तीनों वाणियों से ऊपर 'परा' वाणी है। जो अक्षर है उसी को कहा है—'पर पथा तदक्षरे मग्नि गम्यते।' उसी शब्द को इंजील में कहा है— 'शुरू में कलाम था। कलाम खुदा के साथ था। कलाम खुद खुदा था।'

यही है नाद, जो अनाहत है अर्थात् बिना चोट के स्वयं हो रहा है। ऋग्वेद में लोपामुद्रा (आनन्द-विभोर आपे को भूली हुई आत्मा) कहते हैं।

नदस्य या रुधतः काम आगन् इत आजातो। अमुतः कुतश्चित्

मुझे आकर्षित करनेवाले नद (नाद) का आनन्द प्राप्त हुआ है। यह आनन्द मुझमें से ही प्रकट हो रहा है, न कहीं अन्यत्र से।

नद, नाद, णद अव्यक्ते धातु से बने हैं। अव्यक्त शब्द, गुप्त ध्वनि जो ब्रह्माण्ड में हो रही है, उसी को पिण्ड में पकड़कर ब्रह्माण्डव्याप्त नाद तक पहुँचना है।

यह नाद ही सच्चा योग है। सहज अर्थ आसान नहीं, किन्तु स्वाभाविक योग से तात्पर्य है। यह मार्ग सरल नहीं। इसलिए इस साधना में गुरु की आवश्यकता है। पर गुरु वह हो, जो लक्ष्य तक

पहुँच चुका हो। मार्ग की सब कठिनाइयों से परिचित हो। इस योग में सदाचारपूर्वक जीवन और निरन्तर अभ्यास चाहिए। इसलिए सन्तमत के उपदेष्टा मांसादि तमोगुणी भोजन, नशे, भोग-विलास के विरुद्ध हैं।

उपनिषद् भी कहती है —

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

अर्थ— जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं और जिसका चित्त असमाहित या अशांत है, वह इसे आत्मज्ञान-द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है॥२४॥

वेद मन्त्र के चौथे टुकड़े में बताया है कि 'सब भुवन उसी में स्थित हैं। सब सृष्टि का वही आधार है। अर्थात् वह सर्वव्यापक है। सर्वव्यापक निराकार ही हो सकता है। बिना सूक्ष्मातिसूक्ष्म हुए सबमें समा नहीं सकता और सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व निराकार ही रहेगा। ईश्वर सब लोकों को व्यापक होकर धारण कर रहा है, जैसे हमारा जीव हमारे शरीर को। जैसे हम घटादि, पटादि पदार्थों को उठाते हैं, इस प्रकार ईश्वर सृष्टि को धारण नहीं किये हुए हैं। ऐसा हो तो ईश्वर का अस्तित्व सृष्टि से पृथक् रहेगा और साकार होगा। और साकार पदार्थ सावयव होने से अनित्य रहेगा और सर्वज्ञ नहीं होगा। अतः वेद का प्रतिपादित निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वाधार, चिदानन्दमय भगवान ही सन्तों का अभीष्ट देव है। सन्तों की विशेषता यह है कि वे स्वानुभूत बात कहते हैं और विद्वान लोग शास्त्र के आधार पर उपदेश करते हैं। शास्त्र और सन्तों का अनुभव एक है, यह प्रकट

करना उसी का काम है जो 'श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ' दोनों प्रकार से योग्य हो। विद्वान भी हो, योगी भी। श्रीकृष्ण, स्वामी दयानन्द जैसे महापुरुष इसी कोटि में आते हैं। पहुँचे तो परिणाम में, सगुणवादी भी इसी परिणाम पर हैं।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना ॥

(गोस्वामी तुलसीदासजी)

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी ने अपनी पुस्तक में सन्तों की अनुभूति और वेद का समन्वय करके कालान्तर से बिछुड़े सन्तमत और वैदिक धर्म को एक कर दिया है। महर्षिजी की वाणी (शब्द) का भी अध्ययन किया, सबमें अन्तरानुभूति प्रकट हो रही है। वर्तमान में हमारा देश भौतिकता की ओर बढ़ता जा रहा है। ऐसे समय में वैदिक आध्यात्मिकता गुरुडम और ढोंग से रहित अन्तर्मुखी वृत्ति बनानेवाले उपदेशों की भारी जरूरत है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी और उनके भक्त श्रीविश्वानन्दजी, श्रीउदितनारायण चौधरीजी, प्रोफेसर महेश्वर सिंहजी, श्रीहुलासचन्द्र रूँगटाजी आदि इसी आवश्यकता को पूर्ण कर रहे हैं। भौतिक अन्वेषण के साथ यदि आध्यात्मिकता का पुट भी रहेगा तो कल्याण होगा। चेतन बिना जड़ निर्जीव है, मुर्दा है। माया में डूबने से ब्रह्मशरणागति ही बचा सकती है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति वे ॥ (गीता)

(साप्ताहिक 'आर्य मित्र' से साभार उद्धृत।)

वेद-दर्शन-योग

ऋग्वेद-संहिता

-:: मोक्ष ::-

(१) उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१५॥

अ०२ व०१५ । १५ अ० ६ सू० २४, अष्टक १ मंडल १ खं० १ पृष्ठ ११२

भाष्य—हे परमेश्वर! तू उत्तम कोटि के सात्त्विक बन्धन को उत्तम भोगों द्वारा शिथिल करता है और निकृष्ट, तामस बन्धन को नीचे की जीवयोनियों में भेजकर शिथिल करता है। और मध्यम श्रेणी के पाश को विविध योनियों के भोग से शिथिल करता है। उन सब भोगों के अनन्तर, हे शरण में लेनेहारे एवं सूर्य के समान प्रकाशक! हम तेरे दिखाये, कर्त्तव्य कर्म में चलकर **अखण्ड सुख**, मोक्ष को प्राप्त करने के लिये निष्पाप, स्वच्छ हो जाते हैं ॥

टिप्पणी—यदि सदा की मुक्ति नहीं हो तो 'अखण्ड सुख' नहीं प्राप्त हो सकता है; अतएव वेद को सदा की मुक्ति मान्य है, जैसे कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि सन्तों को यह मान्य है, यथा —

'गुरु मिलि ताके खुले कपाट। बहुरि न आवे योनी बाट॥'

'गड़ा निस्सान तहँ सुन्न के बीच में,
उलटि के सुरत फिर नाहिं आवै।
दूध को मत्थ करि घिर्त न्यारा किया,
बहुरि फिर तत्त में ना समावै॥
माड़ि मत्थान तहँ पाँच उलटा किया,
नाम नौनीति ले सुरत फेरी।
कहै कबीर यों संत निर्भय हुआ,
जन्म औ मरन की मिटी फेरी॥'

(कबीर साहब)

जल तरंग जिउ जलहि समाइआ,
तिउ जोती संग जोति मिलाइआ।
कह नानक भ्रम कटे किवाड़ा,
बहुरि न होइअै जउला जीउ॥

(गुरु नानक साहब)

तजि योग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहि फिरै।

(गो० तुलसीदासजी)

कोटि ज्ञानी ज्ञान गावहिं, शब्द बिन नहिं बाँचहीं।
शब्द सजीवन मूल ऐनक, अजपा दरस देखावहीं॥
सत्तशब्द सन्तोष धरि धरि, प्रेम मंगल गावहीं।
मिलहिं सतगुरु शब्द पावहिं, फेरि न भवजल आवहीं॥

(दरिया साहब, बिहारी; ग्रन्थ दरिया सागर से)

(२) इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनार्नपातो अपसो दधन्विरे । सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥ ३ ॥

अ० ५। व० ७।३ अ० ५ सू० ६० अष्टक ३ मंडल ३ खं० ३ पृष्ठ ३२०

भा०—(ऋभवः) सत्यज्ञान और सत्यन्याय से प्रकाशित और अधिक सामर्थ्यवान होकर विद्वान पुरुष (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान परमेश्वर वा समृद्ध राजा के (सख्यं) मित्रता को (सम्आनशुः) भली प्रकार प्राप्त करें । और (मनोः नपातः) मननशील मनुष्य और चित्त को न गिरने देनेवाले (अपसः) उत्तम कर्मों को (दधन्विरे) धारण करें । वा मननशील दृढ़ मनुष्य के करने योग्य कर्मों को करें । वे (सौधन्वनासः) उत्तम ज्ञानवान पुरुष के पुत्र वा शिष्य होकर (सुकृत्यया) उत्तम क्रिया व आचरण से (सुकृतः) सदाचारवान होकर (शमीभिः) शान्तिदायक कर्मों से (विष्ट्वी) परमेश्वर के परम पद को प्रवेश करके (अमृतत्वम्) अमृतमोक्षपद को (एरिरे) प्राप्त करें । इसी प्रकार उत्तम कर्म कुशल विद्वान पुरुष (मनोः नपातः अपसः) ज्ञान से उत्पन्न कर्मों को करें और उत्तम साधन-सम्पन्न होकर उत्तम क्रिया (Art) से उत्तम काम करें । कर्मों से राष्ट्र में स्थान प्राप्त कर अपने अन्न-जीविकादि लाभ करें ।

टिप्पणी — इस मन्त्र में उत्तम ज्ञानवान (गुरु) पुरुष का शिष्यत्व ग्रहण कर, सदाचारी बन परमेश्वर के परमपद में प्रवेश करके अमृत

मोक्षपद (सदा का मोक्ष) प्राप्त कर लेने और संसार में भी उन्नतिशील होने के लिये विद्वान, सदाचारी, कर्म-कुशल होकर राष्ट्र में राजा वा राष्ट्रपति की मित्रता और समीपता प्राप्त करके, ज्ञान से उत्पन्न कर्मों के करने का आदेश है। राष्ट्र-सेवा छोड़कर केवल मोक्ष साधन के लिये ही आदेश नहीं है। दोनों ओर उन्नतिशील होने के लिये आदेश है। ज्ञान से उत्पन्न कर्मों का करनेवाला कर्मयोगी होता है, जिसमें समाधि साधन-द्वारा समत्व और स्थितप्रज्ञता प्राप्त कर वह कर्म करता रहता है; परन्तु इसकी शिक्षा और दीक्षा तथा सिद्धि गुरु-उपासना के बिना नहीं हो सकती है। श्रीमद्भगवद्गीता में अध्याय ४ श्लोक ३४; अध्याय १३, श्लोक ६ और अध्याय १६, श्लोक १४ में गुरु-सेवा की आवश्यकता बतलाई गई है। सन्तवाणी में तो यह आवश्यकता अत्यन्त दृढ़ता से कही गयी है। जबकि वेद में ही यह आवश्यकता निश्चित रूप से बतलाई गई है, जैसा कि इस वेदमन्त्र के मन्त्रार्थ में लिखा हुआ है, तब कोई अन्य सद्ग्रन्थ इस आवश्यकता की अवहेलना कैसे कर सकता है ? यह मन्त्र संसार और परमार्थ; दोनों मार्गों पर संग-संग चलकर उन्नति करने का आदेश देता है। इसलिये कर्मयोग का यह मूल मन्त्र है। श्रीमद्भगवद्गीता तो कर्मयोग का शास्त्र ही है।

कर्मयोग में कथित दोनों पथों पर संग-संग उन्नतिशील होकर चलना अनिवार्य है। दो में से किसी एक को त्यागने से कर्मयोग साधित नहीं हो सकता है। मोक्षार्थी को अपने ध्येय की प्राप्ति में कर्मयोग के यथार्थ स्वरूप को अपनाकर संसार में रहना अत्यन्त

आवश्यक है। इसीलिये सन्तवाणी में भी स्थान-स्थान पर इसकी झलक बारम्बार देखने में आती है।

कबीर साहब और गुरु नानक साहब तो कर्मयोग के उदित प्रखर सूर्य की तरह प्रकट होकर और संसार में आदर्श की पराकाष्ठा होकर शिक्षा दे गये हैं। इन सन्तों ने और इनके अनुयायी तथा परवर्त्ती सन्तों ने राष्ट्र के आध्यात्मिक, चारित्रिक, सामाजिक और राजनैतिक सेवा-कर्म में नाना प्रकार के कष्ट सहन किये। मौके-मौके पर आवश्यकतानुकूल अपने प्राण भी उस सेवाग्नि में हवन कर दिये और अमर जीवन को प्राप्त किया। उनकी थोड़ी-सी वाणी नीचे लिखी जाती है —

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ॥ टेक ॥
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि बन नहिं जावै ।
वन के गये कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ॥ १ ॥
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ॥ २ ॥
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्हे, परम तत्त को ध्यावै ।
सुरत निरत सों मेला करिके, अनहद नाद बजावै ॥ ३ ॥
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै ।
कहै 'कबीर' सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै ॥ ४ ॥

(कबीर साहब)

बाबा जोगी एक अकेला, जाके तीरथ व्रत न मेला ॥ टेक ॥
झोली पत्र विभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै ॥

माँगि न खाइ न भूखा सोवै, घर अंगना फिरि आवै ॥
पाँच जना की जमाति चलावै, तास गुरु मैं चेला।
कहै 'कबीर' उनि देसि सिधाये, बहुरि न इहि जग मेला ॥

(कबीर साहब)

जोगु न खिंथा जोग न डंडै जोगु न भसम चढ़ाईऐ।
जोगु न मुंदी मूँड़ि मूँड़ाइऐ जोग न सिंञि वाईऐ ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥१॥
गली जोगु न होई ॥
एक द्रिसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीऐ सोई ॥१॥
जोग न बाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाईऐ ॥
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ जोग न तीरथ नाईऐ ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥२॥
सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईऐ ॥
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईऐ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥३॥
नानक जीवतिया मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ ॥
बाजे बाजहु सिंञी बाजे तउ निरभउ पदु पाईऐ ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥४॥

(गुरु नानक साहब)

सतिगुरु की ऐसी बडिआई। पुत्र कलत्र बिचै गति पाई ॥

(गुरु नानक साहब)

गुरु की सेवा करि पिरा जीउ हरिनाम धिआए ॥
मंञहु दूरि न जाहि पिरा जीउ घरि बैठिया हरि पाए ॥

घरि बैठिया हरि पाए सदा चितु लाए सहजे सती सुभाए ॥
गुरु की सेवा खरी सुखाली जिसनो आपि कराए ॥
नामो बीजे नामौ जंमै नामो मंनि बसाए ॥
नानक सचि नाम बडिआई पूरबि लिखिया पाए ॥

(गुरु नानक साहब)

नानक सतिगुरु भेटिऐ
पूरि होवै जुगती।
हँसन दिआ, खेलन दिआ, पैनन दिआ,
खावन दिआ बीचे होवै मुकती ॥

(गुरु नानक साहब)

(३) अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम्।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वाजभार॥१३॥

अ० ५ व० २६।१३ अ० २ सू० १८ अष्टक ३ मंडल ४ खंड ३ पृ० ४६४

भा०—अध्यात्मदर्शी कहता है (अवर्त्या) जन्म-मरण के व्यापार से रहित होकर मैं (शुनः) सुखस्वरूप होकर अथवा (अवर्त्या) पुनः इस संसार में न होने के निमित्त से ही (शुनः) सुखकर परमेश्वर के (आन्त्राणि) ज्ञान करानेवाले गुह्य साधनों को (पेचे) परिपक्व करूँ। (देवेषु) पृथिवी सूर्यादि एवं विषय के अभिलाषी इन्द्रियों के बीच में मैं (मर्डितारम्) किसी को भी परम सुख देने वाला (न विविदे) नहीं पाता हूँ। अथवा मैंने अज्ञानी पुरुष (अवर्त्या) लाचार, अगतिक होकर (शुनः) कुत्ते के समान लोभी आत्मा के

(आन्त्राणि) भीतरी आँतों के तुल्य इन (आन्त्राणि) ज्ञानसाधन इन्द्रियों को ही (पेचे) परिपक्व किया, उनको तपःसाधना से वश किया और उन (देवेषु) विषयाभिलाषुक प्राणों में से एक को भी सुखप्रद नहीं पाया, अनन्तर (जायाम्) इस संसार को उत्पन्न करनेवाली प्रकृति को भी मैंने (अमहीयमाना) महती परमेश्वरी शक्ति के तुल्य नहीं (अपश्यम्) देखा। इतना ज्ञान कर लेने के अनन्तर (श्येनः) ज्ञानस्वरूप प्रभु परमेश्वर (मे) मुझे (मधु) परम मधुर ब्रह्मज्ञान (आजभार) प्रदान करता है।

टिप्पणी — इस मन्त्र में पुनः इस संसार में न होने के (अर्थात् सदा की मुक्ति के) निमित्त सुखकर परमेश्वर के ज्ञान करानेवाले गुह्य साधनों का करना लिखा है। यह तो कबीर साहब की वही बात है कि 'बहुरि नहीं आवना यहि देश।'

-:: ज्योति और अन्तर्नाद ::-

(४) आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानुं स्तनयन्नचिक्रदत्॥ २॥

अ० ४ व० २३।२ अ० ११ सू० ५८ अष्टक १ मंडल १ खंड १ पृ० २९६

भा०— अपने भोग्य कर्मफल को भोग्य अन्न के समान प्राप्त करता हुआ, जरा से रहित आत्मा शीघ्र ही काष्ठों के बीच अग्नि

जिस प्रकार उनका भोग करता हुआ भी उनके ही आश्रय में रहता है, उसी प्रकार व्यापक, आकाश, पृथ्वी आदि तत्त्वों के आश्रय पर ही और शीघ्र ही पिपासित के समान उन्हीं पदार्थों का भोग करता हुआ उनके ही बीच में रहता है और जिस प्रकार वेगवान अश्व मार्ग को पार करता अच्छा मालूम होता है और जिस प्रकार अति अधिक दाहकारी अग्नि के ऊपर का भाग अति उज्ज्वल होता है, उसी प्रकार अति तेजस्वी, सब पापों को भस्म कर देनेहारे इस जीवात्मा का आनन्द सेवन करनेवाला स्वरूप भी बहुत ही प्रिय प्रतीत होता है। आकाश में स्थित मेघ के खंड के समान वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का भजन करनेवाला जीव भी गर्जते मेघ के समान ही अन्तर्नाद करता है।

टिप्पणी — 'प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का भजन करनेवाला अर्थात् परमात्म-ज्योति का दर्शन करनेवाला जीव मेघ के समान गर्जन वा अन्तर्नाद करता है'—से तात्पर्य अन्तर्नाद (अनाहत नाद—अन्तर का ध्वन्यात्मक शब्द) का ध्यान अर्थात् नादानुसन्धान वा सुरत-शब्द-योग करना है। उपनिषदों और सन्तवाणियों में मेघ-गर्जना का यत्र-तत्र बहुत वर्णन है।

> आदौ जलधिजीमूतभेरीनिर्झरसंभवः।
> मध्ये मर्दलशब्दाभो घण्टाकाहलजस्तथा॥

—नादविन्दूपनिषद् ॥३४॥

अर्थ—आरम्भ में नाद समुद्र, बादल, दुन्दुभि, जलप्रपात से निकले

हुए जैसे मालूम होते हैं और मध्य में मर्दल, घण्टा और सिंघा जैसे।

गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै।

(कबीर साहब)

गगन गरज घन बरषहीं, बाजै दीरघ नाद।
अमरापुर आसन करै, जिन्हके मते अगाध॥

(गरीब दास)

साधक अन्तर-अभ्यास में विविध प्रकार की ज्योतियों के दर्शन करता है और शब्दों का श्रवण करता है। ये ज्योतियाँ परमात्म-स्वरूप से व्याप्त है। इसलिये परमात्मा के विविध ज्योति-रूप कहे जाते हैं। उपनिषदों और सन्तवाणियों में इनके विस्तार से वर्णन है; जैसे—

'गगन मण्डल के बीच में, तहवाँ झलके नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निरमल सूर।
रैन अंधेरी मिटि गई, बाजे अनहद तूर॥'

'चन्दा झलके यहि घट माहीं, अन्धी आँखन सूझत नाहीं।
यही घट चन्दा यहि घट सूर, यहि घट बाजे अनहद तूर॥'
'मन्दिर में दीप बहु बारी, नयन बिनु भई अंधियारी॥'

(कबीर साहब)

निशि दामिनी ज्यों चमक चन्दा यिनि पेखै।
अहि निशि जोति निरन्तर देखै॥

अन्तर ज्योति भई गुरु साखी, चीने राम करम्मा ।
नानक हउमै मारि पतीणै, तारा चड़िया लम्मा ॥
प्रगटी जोति जोतिमहि जाता, मनमुखि भरमि भुलाणी ।
नानक भोर भइआ मनु मानिआ जागत रैणि विहाणी ॥

(गुरु नानक)

उलटि देखो घट में जोति पसार ।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवे, विगसि कमल कचनार ॥

(गुलाल साहब)

धुनि महिं ध्यान ध्यान महि जाणिआ, गुरु मुख अकथ कहानी ॥

(गुरु नानक)

'जैसे जल महि कमल निरालमु मुरगाई नैंसाणै ।
सुरति सबदि भवसागरु तरीऐ, नानक नामु बखाणै ॥'
'शब्द अनाहत बाजै पंज तूरा सति गुरुमति लै पूरो पूरा।'

(गुरु नानक)

करम होवै सतिगुरु मिलाए, सेवा सुरति शब्द चित लाए।

(गुरु नानक)

अनहदो अनहदु बाजे, रुण झुनकारे राम ।

(गुरु नानक)

बहुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथैव किम् ।
अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन मारुते ज्योतिरान्तरम् ॥

(मुक्तिकोपनिषद्)

अर्थ— बहुत-से शास्त्रों की कथाओं को मथने से क्या फल ?

हे वायुसुत! अत्यन्त यत्नवान होकर केवल अन्तर की ज्योति की खोज करो।

स्वात्मानं पुरुषं पश्येन्मनस्तत्र लयं गतम् ।
रत्नानि ज्योतिर्नादं तु विन्दु माहेश्वरं पदम् ।
य एवं वेदपुरुषः स कैवल्यं समश्नुते ॥ १०५ ॥
(ध्यानविन्दूपनिषद्)

अर्थ—मनुष्यों को अपनी आत्मा की ओर देखना चाहिये, जहाँ जाकर मन लय हो जाता है। जो रत्नों को, चन्द्रज्योति को, नाद को, विन्दु को और महेश्वर के परम पद को जानता है, वह कैवल्य पद पाता है ॥ १०५ ॥

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद्
(शुक्ल यजुर्वेद का)
ब्राह्मणं २

मूल—तन्मध्ये जगल्लीनम्। तन्नादविन्दुकलातीतमखण्डमण्डलम्। तत्सगुणनिर्गुणस्वरूपम्। तद्वेत्ता विमुक्तः। आदावग्निमंडलम्। तदुपरि सूर्यमण्डलम्। तन्मध्ये सुधाचन्द्रमण्डलम्। तन्मध्येऽखण्ड ब्रह्मतेजोमण्डलम्। तद्विद्युल्लेखावच्छुक्लभास्वरम्। तदेव शाम्भवीलक्षणम्।

तद्दर्शने तिस्रो मूर्तयः अमा प्रतिपत्पूर्णिमा चेति। निमीलितदर्शन-ममादृष्टिः अर्धोन्मीलितं प्रतिपत्। सर्वोन्मीलनं पूर्णिमा भवति। तल्लक्ष्यं नासाग्रम्।

तदभ्यासान्मनःस्थैर्यम्। ततो वायुस्थैर्यम्। तच्चिह्नानि। आदौ तारकवद् दृश्यते। ततो वज्रदर्पणम्। तत उपरि पूर्णचन्द्रमण्डलम्।

ततो नवरत्नप्रभामण्डलम्। ततो मध्याह्नार्कमण्डलम्। ततो वह्निशिखामण्डलं क्रमाद्दृश्यते। तदा पश्चिमाभिमुखप्रकाशः स्फटिक धूम्रविन्दुनादकलानक्षत्रखद्योतदीपनेत्रसुवर्णनवरत्नादिप्रभा दृश्यन्ते। तदेव प्रणवस्वरूपम्।

अर्थ — उस (ब्रह्म) के अंदर संसार लीन (डूबा हुआ) है। (ब्रह्म) नाद, विन्दु और कला के परे, सगुण, निर्गुण तथा अखण्ड मण्डल स्वरूप है, इसका जाननेवाला विमुक्त होता है।

पहले अग्निमण्डल है, इसके ऊपर सूर्यमण्डल है, उसके बीच में सुधामय चन्द्रमण्डल है और उसके मध्य में अखण्ड ब्रह्मतेजमण्डल है। वह शुक्ल बिजली की धार के समान चमकीला है। केवल यही शाम्भवी का लक्षण है। उसके देखने के लिये तीन दृष्टियाँ होती हैं—अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा। आँख बन्द कर देखना अमादृष्टि है, आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा है और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा है। उसका लक्ष्य नासाग्र होना चाहिये।

उसके अभ्यास से मन की स्थिरता आती है। इससे वायु स्थिर होता है। उसके ये चिह्न हैं — आरम्भ में तारा-सा दीखता है। तब हीरा के ऐना की तरह दीखता है। उसके बाद पूर्ण चन्द्रमण्डल दिखलाई देता है। उसके बाद नौ रत्नों का प्रभामण्डल दिखाई देता है। उसके बाद दोपहर का सूर्यमण्डल दिखाई देता है। उसके बाद अग्नि शिखामण्डल दिखाई देता है। ये सब क्रम से दिखाई देते हैं, तब पश्चिम की ओर प्रकाश दिखाई देता है। स्फटिक,

धूम्र (धुआँ), विन्दु, नाद, कला, तारा, जुगनू , दीपक, नेत्र, सोना और नवरत्न आदि की प्रभा दिखाई देती है। केवल यही प्रणव का स्वरूप है।

(५) वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः। तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णंत एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४॥

अ० ४ व० २३। ४ अ०११ सू० ५८ अष्टक १ मंडल १ खंड १ पृष्ठ २९७

भा०—वायु के वेग से तीव्र होकर अग्नि जिस प्रकार तृणों और काष्ठों में विविध रूप से फैलती है, उसी प्रकार यह आत्मा भी प्राणों द्वारा वेगवान, गतिमान, पृथ्वी, वायु, जल आदि तत्त्वों में भी विविध देहों को धारण कर विविध रूपों में स्थित है और जिस प्रकार ज्वालाओं द्वारा और अपने वेग से गमन करने की शक्ति से अग्नि चटचटा आदि बहुत प्रकार के शब्द करती है, अथवा अग्नि जिस प्रकार अपने भीतर आग्नेय तत्त्वों को रखनेवाले मैनसिल, पोटास आदि पदार्थों और फूटकर वेग से निकलनेवाली बारूद आदि की शक्ति से बड़ा भारी धड़ाके का शब्द करती है, उसी प्रकार वह अपने भीतर आत्मा को धारण करनेवाले प्राणों और स्वयं सरण करनेवाली वाणी द्वारा अनायास ही बहुत-से स्वप्न अर्थात् वर्ण ध्वनियों को उत्पन्न करता है।

टिप्पणी — इस मंत्र में और छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय ३, खण्ड १३ के श्लोक ७-८ में सदृशता जान पड़ती है।

अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा दृष्टिः ॥७॥ यत्रै तदस्मिञ्छरीरे स्ँ स्पर्शेनोष्णिमानं विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णावपिगृह्य निनदमिव नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतदृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ८ ॥

अर्थ—जो कि इससे परे स्वर्ग अथवा आकाश में ज्योति चमकती है, एवं विश्व की पीठ पर, सबकी पीठ पर तथा उत्तम और अनुत्तम सब लोकों में चमकती है, यह वही है जो अन्तःपुरुष में ज्योति है, उसी की यह दृष्टि है ॥ ७ ॥ जो कि इस शरीर में छूने से गर्मी का ज्ञान करते हैं, उसी की यह श्रुति है, जो कि यह कानों को बन्द करके ध्वनि के समान और जलती हुई आग के गर्जन के समान सुनते हैं, तो इस तरह उसे देखा भी और सुना भी। अतः चक्षुष्य और श्रुत दोनों से उसकी उपासना करनी चाहिए, जो इसे जानता है ॥ ८ ॥

छान्दोग्योपनिषद् में कथित परमात्मा की, चक्षुष्य और श्रुत से उपासना की विधि, दृष्टियोग और शब्दयोग की विधि है; ऐसा ज्ञात होता है।

(६) आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्षः करिक्रतः। यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्स्तनयन्नेति नानदत्॥ ५॥

अ० २ व० ५।५ अ० २१ सू० १४० अष्टक २ मण्डल १ खंड २ पृष्ठ १३४

भा०—(आत्) उसके पश्चात् जो मुमुक्षु जन (अभ्वं कृष्णम्) 'असत्' काले, अशुक्ल पापमय मलीन कर्माशय या मिथ्या ज्ञान का (ध्वसयन्तः) विनाश करते और (महि) बड़े भारी (अभ्वं) अव्यक्त (वर्षः) वरणे योग्य आत्मस्वरूप को भी (करिक्रतः) साक्षात् कर लेते हैं, (अस्य) इस परमेश्वर को (वृथा) अनायास ही (ईरते) प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि (यत्) जो पुरुष (सीम्) सब प्रकार से, सर्वतोभावेन, (महीम्, वनिम्) उस महान सर्वरक्षक को (प्रअभिमर्मृशत्) प्राप्त हो जाता है, उस तक पहुँच जाता है, वह (अभिश्वसन्) आश्वासन या हृदय की शान्ति को प्राप्त हुआ और (स्तनयन्) मेघ के समान उत्साह से गर्जता हुआ और (नानदत्) सिंह के समान नाद करता हुआ, अति उत्साहवान, निर्भय और अन्तर्ब्रह्मनाद में लीन होकर (प्र एति) परम पद को प्राप्त होता है।

टिप्पणी—इस मन्त्र में अन्तर्ब्रह्मनाद में लीन होकर परमपद प्राप्त होता है, कहा गया है।

(७) अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत। गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत्॥३॥

अ० २ व०२२। ३ अ०२१ सू०१५२ अष्टक २ मण्डल १ खंड २ पृष्ठ १९६

भा०—जिस प्रकार (पद्वतीनां) पैरोंवाले जन्तुओं से सबसे प्रथम (अपात्) पाद-रहित उषा आती है और (मित्रा-वरुणा) दिन और रात्रि; इन दोनों में से उस रहस्य को कोई नहीं जानता और जिस प्रकार (गर्भः) दोनों के ग्रहण या धारण करने में समर्थ आदित्य (अस्य) इस जगत के (भारं भरति) पोषणादि कार्य करता और (ऋतं) व्यक्त प्रकाश को पूर्ण करता और (अनृतं) असत्य अन्धकार को (नि तारीत्) दूर कर देता है, उसी प्रकार (पद्वतीनां प्रथमा) चरण, अध्याय, पाद, सर्ग आदि विभागवाली वाणी से भी (प्रथमा) प्रथम, श्रेष्ठ, (अपात्) चरणादि से रहित वाणी (एति) प्रकट होती है । हे (मित्रा-वरुणा) अध्यापक, विद्यार्थी आदि जनो (वां) आप दोनों में से (कः तत् चिकेत) कौन इस रहस्य को जानता है ? कोई नहीं । तो भी (गर्भः) विद्याओं को ग्रहण करने में समर्थ विद्यार्थी जिज्ञासु पुरुष (अस्य) इस सम्मुख स्थित आचार्य के (भारं आ भरति) पोषित ज्ञान को सब प्रकार से धारण करता है । वही (ऋतं पिपर्त्ति) उसके सुविचारित सत्य ज्ञान को पूर्ण करता और (अनृतं नि तारीत्) अज्ञान अन्धकार और अनृत व्यवहार को दूर करता उससे पार हो जाता है ।

टिप्पणी—चरण, अध्याय, पाद, सर्ग आदि विभागवाली वाणी से भी प्रथम श्रेष्ठ चरणादि से रहित वाणी आदिनाद है, जो परमात्मा के अतिरिक्त किसी से होने योग्य नहीं है । इसी वाणी को अनाहत नाद कहते हैं और अमृतनाद उपनिषद् में इसको—

अघोषमव्यञ्जनमस्वरं च अकंठताल्वोष्ठमनासिकं च ।
अरेफजातमुभयोष्मवर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित् ॥ २५ ॥

अर्थ—'अक्षर कभी भी क्षीण अथवा नष्ट अथवा बन्द नहीं होता—वह घोष-रहित, व्यंजन-रहित, स्वर-रहित, कण्ठ, तालु, ओष्ठ, नासिका, मूर्धा सबसे निराश्रित स्वतन्त्र अव्यक्त अनाहत नाद स्वरूप है' कहा गया है। अवश्य ही यह रहस्यमयी वाणी है।

शब्द शब्द बहु अन्तरा, वो तो शब्द विदेह ।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह ॥
(कबीर साहब)

यह वर्णात्मक नहीं हो सकता, यह ध्वन्यात्मक है। यह केवल गहरे ध्यान में ही विदित होने योग्य है। इसका 'चरण', 'अध्याय' और पादादि में विभाग नहीं हो सकता। इस तरह का विभाग वर्णात्मक शब्दों का होता है, आन्तरिक ध्वन्यात्मक नाद का नहीं। प्रणव अर्थात् ॐ उस अनाहत ध्वन्यात्मक आदिनाद का वाचक है और ॐ का वाच्य वह रहस्यमय नाद परमात्मा का वाचक है। इसी को 'योगशिखोपनिषद्' में 'अक्षरं परमोनादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते' कहा गया है। सन्तों का परम ध्येय यही है। इसी की प्राप्ति होने पर परमात्मा के दर्शन और मोक्ष मिलते हैं। यही ब्रह्मनाद सन्तों की वाणियों में आदिनाद, रामनाम, सत्यनाम, सारशब्द और सत्य शब्द कहकर विख्यात है।

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बन्धन मोह॥
राम-राम सब कोइ कहै, नाम न चीन्है कोइ।
नाम चीन्ह सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोइ॥

(कबीर साहब)

(८) तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदि-
शश्चतस्त्रः। ततःक्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति॥ ४२॥

अ० ३ व० २२ अ०२२ सू० १६४।४२ अ० २ मण्डल ३ खण्ड२ पृष्ठ ३०५

भा०—जिस प्रकार (तस्याः) उस विद्युत् से आघात खाकर (समुद्राः) जलों को बहानेवाले मेघ (अधि वि क्षरन्ति) बहुत अधिक मात्रा में और विशेष रूप से बरसते हैं। (तेन) उस वर्षा से (प्रदिशः चतस्त्रः) चारों दिशाओं में बसनेवाले जीवगण (जीवन्ति) अन्न-द्वारा जीवन धारण करते हैं। (ततः) उस मध्यम वाणी, मेघमयी विद्युत् से ही (अक्षरं क्षरति) जल बरसता है और (तत्) उसी के आश्रय (विश्वम्) समस्त संसार (उप जीवति) अपना जीवन धारण करता है। उसी प्रकार (तस्याः) उस परमेश्वरी शक्ति से (समुद्राः) समुद्र के समान अथाह ऐश्वर्यों को बहानेवाले (वि क्षरन्ति) विविध ऐश्वर्य बहाते हैं। उससे (चतस्त्रः प्रदिशः जीवन्ति) चारों दिशाओं में स्थित लोक जीते हैं, (ततः) उसी से 'अक्षर' अक्षय जीवन शक्ति प्राप्त होती है, जिसको समस्त संसार या (विश्वम्) उसमें प्रविष्ट जीव संसार-जीवन प्राप्त करता है।

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥

—मनु० १२, १२४

पञ्चभूतों से उत्पन्न एवं पञ्चेन्द्रियों से ग्राह्य भोग्य ऐश्वर्य ही अक्षय समुद्र हैं। उन्हीं का जीवगण अनादि काल से भोग कर रहे हैं। (२) वाणी से समुद्र-रूप शब्दों के सागर उत्पन्न होते हैं, सब प्राणीगण उसी वाणी पर जीते हैं। अथवा (चतस्त्रः प्रदिशः) उत्तम उपदेश देनेवाली चार वेद-वाणियाँ उसी वाणी पर आश्रित हैं। उसी वाणी से (अक्षर) अक्षर अविनाशी ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है, जिसका (विश्वम्) उसमें प्रविष्ट अभ्यासी जीव, गुरु की उपासना और गुरु-शुश्रूषा द्वारा भृत्य के समान ज्ञान प्राप्त करता है।

टिप्पणी—इस मन्त्र में कहा गया है कि वाणी से शब्द-समुद्र उत्पन्न होते हैं, वाणी से अक्षर (अनाश) ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है। चार वेद-वाणियाँ उसी वाणी पर आश्रित हैं और उस वाणी में प्रवृष्ट हुआ जीव गुरु की उपासना और शुश्रूषा द्वारा भृत्य के समान ज्ञान प्राप्त करता है। जिस वाणी के सब उपर्युक्त गुण कहे गये, उसका विशेष ज्ञान प्राप्त करना और उसमें प्रविष्ट होने की विधि को जानकर उसमें प्रविष्ट होकर ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है। अवश्य ही यह वाणी बहुत अद्‌भुत है कि चार वेद (ऋक्, साम, यजुः और अथर्व) की वाणियाँ भी इसके आश्रित हैं।

संवत् १९९३ में 'कल्याण' पत्र (गीता प्रेस, गोरखपुर से निकलने

वाला) के 'वेदान्त-अंक' के पृष्ठ ४०७ के 'नादब्रह्म मोहन की मुरली' शीर्षक लेख में लिखित 'नादब्रह्म ही शब्दब्रह्म का बीज है। वेदों का प्रादुर्भाव इसी नाद से होता है। नाद का उद्भव परमेश्वर की सच्चिदानन्दमयी भगवती स्वरूपा शक्ति से होता है।' उपर्युक्त वेद-मन्त्रार्थ कि 'वेद-वाणियाँ उसी वाणी पर आश्रित हैं।' वेदान्तांक से उद्धृत उपर्युक्त विषय नाद से वेद की उत्पत्ति होने का समर्थन करता है और वेदान्तांक का वह लेख वेदों की उस आधारभूत वाणी को नादात्मक (ध्वन्यात्मक) बतलाता है।

महर्षि स्वामी दयानन्दजी महाराज के 'सत्यार्थ प्रकाश' के सप्तम समुल्लास में है कि—'कानों को अंगुलियों से मूँद के देखो, सुनो कि बिना मुख, जिह्वा, ताल्वादि स्थानों के कैसे-कैसे शब्द हो रहे हैं, वैसे जीवों को अन्तर्यामी रूप से (ईश्वर ने) उपदेश किया है।'

इससे भी ज्ञात होता है कि चारों वेदों का उद्भव ध्वन्यात्मक शब्द या नाद से ही हुआ है। बाह्य और अन्तर अवयवों-सहित शरीर से ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक दोनों प्रकार के शब्द स्वभावतः होते हैं, परन्तु इसके बिना वर्णात्मक शब्द हो, असम्भव है। कानों को बन्द करके जो अन्तर में अपने आप शब्द सुनने में आता है, वह वर्णात्मक नहीं, ध्वन्यात्मक है। 'सत्यार्थ प्रकाश' में इसी अन्तर्ध्वनि को बतलाकर कहा गया है कि निराकार ईश्वर ने अन्तर्यामी रूप से वेदों का उपदेश इसी तरह किया है। इस कथन से भी वेदों का ध्वन्यात्मक शब्द से प्रादुर्भाव सिद्ध होता है।

सृष्टि क्रमानुसार स्वाभाविक ही पहले सूक्ष्म होगा, उसके बाद स्थूल होगा। ध्वन्यात्मक शब्द सूक्ष्म है और वर्णात्मक शब्द स्थूल है। इसलिये वर्णात्मक चारों वेदों का उपदेश ध्वन्यात्मक शब्द या नाद पर आश्रित है अथवा वेदों का उद्भव नाद से है, कहना यथार्थ जँचता है।

अब यह देखना है कि किस वाणी से अक्षर (अनाश) ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है ? कठोपनिषद्, अध्याय १, वल्ली २ में कहा गया है कि—'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥ २३॥

अर्थ— यह आत्मा वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणा शक्ति अथवा अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है। यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है, उस (आत्मा) से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

इस पर स्वामी श्रीशंकराचार्यजी महाराज का भाष्य है—

'नायमात्मा प्रवचनेनानेकवेदस्वीकरणेन लभ्यो ज्ञेयो नापि मेधया ग्रन्थार्थधारणशक्त्या। न बहुना श्रुतेन केवलेन।'

अर्थ—यह आत्मा प्रवचन अर्थात् अनेकों वेदों को स्वीकार करने से प्राप्त यानी विदित होने योग्य नहीं है, न मेधा यानी ग्रन्थ-धारण की शक्ति से ही जाना जा सकता है और न केवल बहुत-सा श्रवण करने से ही।

ब्रह्मविन्दूपनिषद् में कहा गया है कि —

द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥ १७॥

अर्थ—दो विद्याएँ समझनी चाहिए, एक तो शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। शब्दब्रह्म में जो निपुण हो जाता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।

और गोरखपुर से संवत् १९९२ में प्रकाशित योगांक में महामहोपाध्याय आचार्य श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए० लिखित 'नादानुसंधान' शीर्षक लेख में वर्णित है—''शास्त्र जिसको ओंकार अथवा प्रणव का स्वरूप कहते हैं, वही उपाधि-रहित शब्दतत्त्व है। वैयाकरणों ने तथा किसी-किसी प्राचीन साधक सम्प्रदाय ने 'स्फोट' नाम से इसकी व्याख्या की है। वह स्फोट ही अखण्ड सत्तारूप ब्रह्मतत्त्व का वाचक है। अर्थात् इसी से ब्रह्मभाव की स्फूर्ति होती है। प्रणव ईश्वर का वाचक है, इस बात का भी तात्पर्य यही है। वाचक स्फोट शब्दब्रह्म के रूप में और वाच्य सत्ता परब्रह्म के रूप में वर्णित है। अतएव एक तरह से ब्रह्म ही ब्रह्म का प्रकाशक है, यह कहा जा सकता है। स्वप्रकाश ब्रह्म अपने स्वरूप के अतिरिक्त और किसी पदार्थ के द्वारा प्रकाशित नहीं हो सकता—यह कहने की जरूरत नहीं। परन्तु स्फोट या शब्दतत्त्व जबतक जीव के लिये अव्यक्त रहता है, तबतक उसके द्वारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसलिये योगी यथाविधि ध्वनि और नाद का अवलम्बन करके इसको अभिव्यक्त करते हैं। साधक का मन नाद के साथ युक्त होने पर अनायास परब्रह्म पद तक उठकर चिन्मय आकार धारण करता है और चैतन्य के अंदर अपने आपको मिला देता है।''

योगशिखोपनिषद् में शब्दब्रह्म की व्याख्या है —

अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।

अर्थ—अक्षर (अनाश) परमनाद को शब्दब्रह्म कहते हैं।

उपर्युक्त सब उद्धरणों से सिद्ध होता है कि जिस वाणी के द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है, वह वाणी वर्णात्मक नहीं है, ध्वन्यात्मक है और वह स्फोट वा आदिनाद है। यह स्फोट वा आदिनाद पहले ही किसी को मिलने योग्य नहीं है। इसके मिलने के पहले विविध अनहद नादों का अभ्यास सुरत-शब्द-योग वा नादानुसन्धान के द्वारा करने पर अन्त में वेद-कथित उपर्युक्त वाणी मिलकर ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है। इस वाणी को सन्तलोग ईश्वर का नाम, सत्यनाम और आदिनाम आदि भी कहते हैं; जैसे —

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बन्धन मोह॥
शब्द शब्द सब कोइ कहै, वो तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह॥
सकल नाम जब एक समाना। तबहीं साध परम पद जाना॥

(कबीर साहब)

एक ॐ सतनाम...

इस गुफा महि अखुट भंडारा। तिसु बिचि बसै हरि अलख अपारा॥
आपे गुपतु परगट है आपे गुर सबदि आप वंञावणिआ॥ १॥

हउ वारी जीउ वारी अंम्रित नामु मंनि वसावणिआ ॥
बिनु सबदे नामु न पाए कोई गुर किरपा मंनि वसावणिआ ॥
(गुरु नानक)

(९) तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १०॥

अ० ४ व० १० अ० ५ सू० ६२।१० अष्टक ३ मण्डल ३ खंड ३ पृष्ठ ३३३

भा०—(यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में प्रेरण करता है, (सवितुः) सर्वोत्पादक उस (देवस्य) प्रकाश-स्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वदाता परमेश्वर के (तत्) उस अनुपम (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ (भर्गः) पापों को भून डालनेवाले समस्त कर्म-बन्धनों को भस्म करनेवाले तेज को (धीमहि) धारण करें और उसी का ध्यान करें। (२) जो (नः) हमारे (धियः) समस्त कर्मों को संचालित करता उस सर्वप्रेरक देव, दानशील, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उस सर्वशत्रुतापकतेज और प्रजा-भृत्यादिपालक (भर्गः) अन्न को (धीमहि) धारण करें ।

वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः ।
कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयन्त्सविता याभिरेति ॥
(अथर्ववेद)

वेद, छन्द (मन्त्र) उसी सर्वोत्पादक परमेश्वर के वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ सर्वपापनाशक तेज है, जिनको सर्वप्रकाशक परमेश्वर का कवि विद्वान लोग 'अन्न' अर्थात् अक्षय ऐश्वर्य बतलाते हैं। कर्म

ही धी है, यही मैं तुझे उपदेश करता हूँ कि जिनसे सर्वोत्पादक प्रभु सूर्यवत् प्रेरणा करता हुआ सब जीवों वा लोकों को प्राप्त होता है।

टिप्पणी — इस मन्त्र में ज्योतिर्ध्यान की आज्ञा है।

(१०) एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव सङ्क्रोश-
मानाः। एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो
अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६॥

अ० ५ व० २५ अ० २ सू० १८।६ मंडल ४ अष्टक ३ खं० ३ पृष्ठ ४५९

भा०— (ऋतावरीः इव) जिस प्रकार जल से भरी हुई नदियाँ (अलला भवन्तीः) अव्यक्त ध्वनि से कल-कल करती हुई जाती हैं और (ऋतावरीः इव) जिस प्रकार उषाएँ (अलला भवन्तीः) पक्षियों की अव्यक्त ध्वनि करती हुई (अर्षन्ति) आती हैं, उसी प्रकार (एतत्) ये (ऋतावरी) 'ऋत' सत्य कारण परमेश्वर की शक्ति को धारण करनेवाली सब विकृति में (अलला भवन्तीः) अति मनोहर ध्वनि करती हुई वा अद्भुत आश्चर्यजनक होती हुई (अर्षन्ति) प्रकट होती हैं और (संक्रोश मानाः) बड़े प्रकट शब्दों से कुछ पुकार रही हैं। हे विद्वान पुरुष! (एताः वि पृच्छ) इनसे तू विशेष रूप से पूछ कि ये (इदं किम् भनन्ति) यह क्या कह रही हैं। (कम्) क्या (आपः) जल धाराएँ (परिधिं) अपने को धारण करनेवाले मेघ वा पर्वत को स्वयं (रुजन्ति) तोड़कर बाहर निकलती हैं ? और क्या (आपः) व्यापक उषाएँ अपने धारक (अद्रिं) मेघ तुल्य अन्धकार

को स्वयं तोड़ती हैं। उसी प्रकार क्या (आपः) ये समस्त प्राण एवं प्राणीगण (अद्रिं) पर्वतवत् अभेद्य (परिधिम्) अपने धारक इस स्थूल देह या जड़ प्रकृति तत्त्व को स्वयं (रुजन्ति) पीड़ित एवं भग्न करते हैं ? नहीं। जिस प्रकार मेघ से जलधाराओं को बहा देने में, विद्युत् उषाओं को प्रकट करने में सूर्य कारण है, उसी प्रकार इन लोकों, प्राणों और प्राणियों के जड़ प्रकृति से उत्पन्न होने में परमात्मा और आत्मा चेतन कारण हैं। ये सब यही बात बतला रहे हैं। वही चेतन 'इन्द्र' है। (२) राज्य में (ऋतावरीः) धन के बल पर चलनेवाली, अव्यक्त शब्द करनेवाली सेनाएँ (संक्रोशमानाः) शत्रुपक्ष को ललकारती हुई जाती हैं। क्या बतलाती हैं, क्या वे (आपः) जलधारावत् जानेवाली प्रजाएँ और सेनाएँ स्वयं (अद्रिं परिधिं) पर्वतवत् तुंग परिकोट के तुल्य शत्रुबल या सर्वतोरक्षक (अद्रिं = वज्रं) शस्त्रबल को तोड़ सकती हैं ? नहीं, केवल सेनापति ही तोड़ सकता है।

टिप्पणी — इस मन्त्र से कथित 'अति मनोहर ध्वनि' वा 'बड़े प्रकट शब्दों से कुछ पुकार रही है' से उसी तरह का वर्णन ज्ञात होता है, जिस तरह कि बाबा देवी साहब की छपाई घटरामायण के इस पद्य से विदित होता है।

सुन लामकां पर पहुँच के तेरी पुकार है।
है आ रही सदा[१] से सदा[२] यार देखना॥

'परमात्मा की शक्ति को धारण करनेवाली ध्वनि' वा 'बड़े शब्दों से पुकार' ब्रह्मनाद ही हो सकता है। नादानुसन्धान वा सुरत-शब्द-योग

१. सर्वदा। २. जोर की आवाज।

इसी नाद वा ध्वन्यात्मक पुकार को पाने के लिये किया जाता है; क्योंकि अभ्यासी भक्त इसी ब्रह्मनाद वा शब्दब्रह्म को पकड़कर उससे आकृष्ट हो, परमात्म-ब्रह्म तक पहुँचकर सदा की मुक्ति प्राप्त करता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते ।

(योगशिखोपनिषद्)

अर्थ—अक्षर (अनाश) परमनाद को ही 'शब्दब्रह्म' कहते हैं।

द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १७ ॥

(ब्रह्मविन्दूपनिषद्)

अर्थ—दो विद्याएँ समझनी चाहिये, एक तो शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। शब्दब्रह्म में जो निष्णात (निपुण) हो जाता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।

(११) प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः। पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १॥

अ० २ व० १७।१अ० ३ सू० ४२ अष्टक ४ मंडल ५ खंड ३ पृ० ८४४

भाष्य—हे विद्वन्! (शन्तमा) अति शान्तिकारक (दीधिती) उत्तम ज्ञान का प्रकाश करती हुई (गीः) वाणी (वरुणं) श्रेष्ठ (मित्रं) सबके स्नेही (भगम्) सेवायोग्य ऐश्वर्यमान और (अदितिम्) अखण्डित व्रत और शासन के पालक पुरुष को प्राप्त होती है; तू भी

उसको (नूनम् अश्याः) अवश्य प्राप्त कर । वह वाणी (पृषद्योनिः) मेघ के तुल्य सुख-वर्षणकारी अन्तरात्मा में उत्पन्न होती और (पञ्च होता) पाँचों प्राणों द्वारा गृहीत ज्ञान को अपने में लेनेहारी है । उसको ऐसा पुरुष (शृणोतु) सुने जिसका (अतूर्त्तपन्थाः) ज्ञान-मार्ग विनष्ट न हुआ हो, जो (असुरः) बलवान और प्राणों के सुख में रमण करता हो और (मयोभुः) सब सुखों का आश्रयस्थान हो । (२) राष्ट्र में अहिंसित मार्गवाला, बलवान, सुखप्रद राजा, प्रजा की ऐसी वाणी को सुने, जो (पृषद्योनिः) परिषद् (या जूरी) से उत्पन्न हो और पाँच व्यक्ति पञ्चजन उसको स्वीकार करें ।

टिप्पणी— इस मंत्र में वर्णन है कि 'जिसका ज्ञान-मार्ग विनष्ट न हुआ हो, जो प्राणों के सुख में रमण करनेवाला हो, वह उस वाणी को सुनता है, जो अन्तरात्मा में उत्पन्न होती है; मेघ के तुल्य सुख वर्षणकारी है।' प्राणों से सुख में रमण करनेवाला योगी होता है । योगी अवश्य ही अन्तरात्मा में उत्पन्न हुए शब्द को सुनता है । अन्तरात्मा में उत्पन्न—योगी से सुनने योग्य शब्द अन्तर्ध्वनि वा अन्तर्नाद है । नादानुसन्धान वा सुरत-शब्द-योग द्वारा इसकी उपासना करके योगी ईश्वर को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है ।

(१२) यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमा विवासति ।
गिरा वाजिरशोचिषम् ॥ १३ ॥

अ०१ व०३१।१३ अ०३ सू०१९अष्टक ६ मण्डल ८ खण्ड ५ पृष्ठ ३४२

भा०—(यः) जो (हव्यदातिभिः) चरु आदि हव्य पदार्थों की आहुतियों से (अग्नि) जिस प्रकार अग्नि को (आविवासति) यजमान सेवन करता है, उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (अग्निं) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान-प्रकाशक (सुदक्षम्) उत्तम, कार्य-कुशल पुरुष को (हव्यदातिभिः) उत्तम ग्राह्य तथा भोज्य पदार्थों के दानों से और (नमोभिः) नमस्कार आदि सत्कारयुक्त वचनों से वा अन्नों से (आविवासति) परिचर्या करता है, (वा) और जो (अजिर-शोचिषम्) न नाश होनेवाली दीप्ति से युक्त अग्निवत् अविनाशी कान्तिवाले, प्रकाश-स्वरूप आत्मा को (गिरा) वाणी द्वारा (आविवासति) साक्षात् करता है । वही पुरुष वास्तविक अग्निहोत्र और वास्तविक स्वप्रकाश आत्म-दर्शन वा उपासना करता है ।

टिप्पणी—इस मन्त्र में वाणी वा शब्द द्वारा आत्मा के साक्षात्कार करनेवाले को वास्तविक अग्निहोत्री और वास्तविक आत्मदर्शी कहा गया है। शब्द द्वारा आत्मा के साक्षात्कार का अर्थ है—अन्तर्नाद की उपासना (सुरत-शब्द-योग) से आत्मदर्शी होना।

(१३) अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३॥

अ० ४ व० ११।३ अ० ६ सू० ४८ अष्टक ६ मण्डल ८ खण्ड ५ पृष्ठ ५५४

भा०—हमलोग (सोमम् अपाम) औषधि रस को जिस प्रकार पान करते और (अमृताः अभूम्) अमृत, सुखी, दीर्घायु होते हैं, उसी

प्रकार हमलोग (सोमम् अपाम) ऐश्वर्य, वीर्य और पुत्र-शिष्यादि का पालन करें और 'अमृत' दीर्घायु अमर होवें। हमलोग (ज्योतिः आगन्म) प्रकाश को प्राप्त हों । (देवान् आविदाम) शुभगुणों, विद्वान पुरुषों और वायु , पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त करें, जानें । हे (अमृत) अमृतस्वरूप! (अरातिः) शत्रु (नूनम् अस्मान् किं कृणवत्) निश्चय से हमारे प्रति क्या कर सकता है ? कुछ नहीं । और (मर्त्यस्य धूर्तिः किमु) मनुष्य का हिंसा-स्वभाव भी विद्वान ब्रह्मचारी का कुछ नहीं कर सकता ।

टिप्पणी—इस मंत्र में ज्योति की प्राप्ति की प्रार्थना है ।

(१४) स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥३॥

अ० ८ व० २६।३ अ० २ सू०३६ अष्टक ६ मंडल ९ खण्ड ६ पृष्ठ ९१

भा०—हे (पूर्व्यः) पूर्ण ! सबसे प्रथम पूज्य! हे (पवमान) पवित्रकारक! (सः) वह तू (नः) हमें (ज्योतींषि) नाना प्रकाश (वि रोचय) प्रकाशित कर और (नः) हमें (क्रत्वे दक्षाय) ज्ञान और बल सम्पादन के लिये (हिनु) प्रेरित कर ।

टिप्पणी—दृष्टियोग के साधन में नाना प्रकार के प्रकाशों की अनुभूति होती है ।

(१५) शृण्व वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

अ० ८ व०३१।३ अ० २ सू० ४१ अष्टक ६ मंडल ९ खण्ड ६ पृष्ठ १००

भा०—(दिवि विद्युतः चरन्ति) आकाश में बिजलियाँ चलती हैं और उस समय (वृष्टे इव स्वनः) वृष्टि के शब्द के समान (पवमानस्य शुष्मिणः) बलवान पापशोधक उसका (स्वनः) शब्द (शृण्वे) सुन पड़ता है । साधक के (दिवि) मूर्धास्थल में विद्युत् की-सी कान्तियाँ व्यापती हैं, अनाहत पटह के समान गर्जन अनायास सुनता है । वह स्वच्छ पवित्र आत्मा का ही शब्द होता है ।

टिप्पणी—इस मन्त्र में अन्तर्ज्योति और पापशोधक आत्मा के ही अनाहत शब्द के श्रवण की विधि है कि भक्त साधक मूर्धा में उस ज्योति का दर्शन करता है और कथित शब्द वा नाद को पटह अर्थात् ढोल के समान सुनता है ।

'कहै कबीर सुनो भाई साधो बाजत अनहद ढोल रे ॥'

-:: ब्रह्म की व्यापकता, प्रकृति और जीव ::-

(१६) गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्च-
रथाम् । अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो
अमृतः स्वाधीः ॥२॥

अ० ५ व०१४ । २ अ०१२ सू० ७० अष्टक १ मंडल १ खंड १ पृष्ठ ३५६

भा०— जो परमेश्वर प्राणों और सर्वत्र व्यापक प्रकृति के

परमाणुओं और लोकों के बीच गर्भ के समान छुपा है या उसको पकड़ने वा थामने और वश करनेवाला है। जो किरणों के बीच सूर्य के समान सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को वश करता है। जो स्थावर, अचेतन पदार्थों के भीतर व्यापक, उनको भी वश करने वाला है। जो विचरनेवाले जंगम पदार्थों के बीच व्यापक और उनका भी वशीकर्त्ता है। [मंत्र संख्या अष्टौ शतानि ८००] और वह पर्वत के समान अभेद्य, कठिन पदार्थ के बीच में और गृह के समान द्वारवान, सच्छिद्र पदार्थों में भी व्यापक है, जो प्रजाओं को सुख से बसानेवाले राजा के समान समस्त पदार्थों में चेतना रूप से विद्यमान, जन्म-मरण-रहित, अमृतमय और समस्त संसार को उत्तम रीति से धारण करनेहारा, स्थापन करने हारा और सबको पोषण करने हारा है। हम उसी परमेश्वर का भजन करें।

टिप्पणी—प्रकृति के परमाणुओं में ब्रह्म व्यापक है, तो परमाणु भी ब्रह्मतत्त्व से ही बना हुआ मानने योग्य है। अतएव ब्रह्म से तत्त्व-रूप में प्रकृति भिन्न नहीं मानी जा सकेगी।

(१७) य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन्।
स्वाधीर्देवः सविता ॥ ८॥

अ०४ व० २६। ८अ० ६ सू० ८२ अष्टक ३ मण्डल ५ खण्ड ४ पृ० १४८

भा०—जिस प्रकार (सविता उभे अहनी अप्रयुच्छन् पुरः एति) सूर्य दिन-रात्रि दोनों के पूर्व प्रमाद-रहित होकर आता है, उसी प्रकार (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (देवः) सर्वप्रकाशक, सर्वसुखदाता

(सु आधीः) सुखपूर्वक, उत्तम रीति से जगत को प्रकृति में, मातृगर्भ में पिता के समान अव्यय बीज का आधान करनेवाला प्रभु (इमे) इन (अहनी) कभी नाश न होनेवाले जीव और प्रकृति (उभे) दोनों अनादि पदार्थों के (पुरः) पूर्व ही (अप्रयुच्छन्) सतत प्रमाद-रहित सर्वसाक्षी होकर (एति) व्याप्त रहता है। वही परमेश्वर सबसे उपासना करने योग्य है।

टिप्पणी—इस मंत्र में प्रकृति और जीव; दोनों अनादि पदार्थों के पूर्व से ही ईश्वर का रहना कहा गया है। अनादि के पूर्व से जब ईश्वर है, तब ईश्वर को अनादि का आदि मानना अनुचित नहीं। इसलिये बंगला योग-सङ्गीत के पद्य में ईश्वर को अनादि का आदि कहा गया है। 'अनादिर आदि परम कारण।' जो पदार्थ पीछे से हो तो उसी के पूर्व से कुछ का होना हो सकता है। वह तब अवश्य ही उपजा वा बना है, ऐसा मानने योग्य है। ऐसे पदार्थ के होने के देश और काल यदि इसलिये नहीं बतलाये जा सकें कि देश और काल उसके पीछे बने हों, तब उस पदार्थ को उपज-ज्ञान से सादि और देश-काल के ज्ञान से अनादि कह सकेंगे। जबकि प्रकृति के पूर्व से ही ईश्वर है, तब प्रकृति पीछे से हुई है अर्थात् उपज-ज्ञान से वह अनादि नहीं, सादि है। परन्तु देश-काल-ज्ञान से अनादि है; क्योंकि प्रकृति के बिना देश और काल नहीं बन सकते। त्रिगुणात्मिका प्रकृति, ब्रह्म से उपजी है, ऐसा महाभारत, शान्तिपर्व, उत्तरार्द्ध अ० १३२ में है।

ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र में इस तरह है—

अक्षराः प्रकृतिः प्रोक्ता अक्षरः स्वयमीश्वरः ।
ईश्वरान्निर्गता साहि प्रकृतिर्गुणबन्धना ॥ ९९ ॥

अर्थ— अक्षर ही (अक्षर ब्रह्म ही) स्वयं प्रकृति है और अक्षर को ही स्वयं ईश्वर जानोगे । ईश्वर से प्रकृति निकली हुई है और वही प्रकृति सर्वादि त्रैगुण मिश्रित है और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, अध्याय ३ श्लोक १५ में भी है, 'प्रकृति ब्रह्म से हुई है'; यथा —

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

अर्थ—कर्म की उत्पत्ति ब्रह्म से अर्थात् प्रकृति से हुई है और यज्ञ, ब्रह्म-अक्षर से अर्थात् परमेश्वर से हुआ है । इसलिये (यह समझो कि) सर्वगत ब्रह्म ही यज्ञ में सदा अधिष्ठित रहता है ।

(गीता-रहस्य—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक)

इस श्लोक के 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ प्रकृति लो० बा० गंगाधर तिलक ने तथा महात्मा गाँधी ने किया है (गी० र० और अनासक्तियोग देखिये) और भगवद्‌गीता के अ० १४ श्लोक ३ में भी प्रकृति को महद् ब्रह्म कहा गया है । इन सब प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि त्रिगुणात्मिका प्रकृति उपज-ज्ञान से अनादि नहीं, सादि है ।

**(१८) वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया ।
मती विप्राः सम स्वरन् ॥२१॥**

अ० १ व० ३४।२१ अ० ३ सू० ६३ अष्टक ७ मंडल ९ खंड ६ पृष्ठ १४५

भा०—(विप्राः) विद्वान जन (वृषणं) बलवान, सब सुखों के बरसानेवाले, (सोमम्) सबके प्रेरक सबके उत्पादक (अप्तुरम्)

प्रजाओं, जीवों, प्राणों और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के भी प्रेरक को (ऋतस्य धारया) सत्य-ज्ञानमय वेद की वाणी से और (मती) स्तुति से (सम् अस्वरन्) एक ही साथ स्वरपूर्वक स्तुति करते; उसी के गुणों का वर्णन करते हैं।

टिप्पणी—इसमें प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु को विदित किया गया है। परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण परमाणु में भी अवश्य ही व्यापक है। तब परमात्मा से ओत-प्रोत हुआ यह परमाणु वैसे ही हुआ जैसा कि जल से ओत-प्रोत बर्फ। इस तरह यह विचार 'अद्वैतवाद' का समर्थन करता है।

(१९) स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः। स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह विभ्युषां ॥२॥

अ०३ व०२।२ अ०४ सू० ७७ अष्टक ७ मंडल ९ खण्ड ६ पृष्ठ २३८

भा० —(सः) वह (पूर्व्यः) सबसे पूर्व विद्यमान और सब प्रकार से पूर्ण, (दिवः परि) सूर्यादि लोकों के भी (परि पवते) ऊपर व्यापक है। उन पर उस जगत-उत्पादक का शासन है। वह (श्येनः) अति शुक्ल वर्ण, तेजोमय, अद्भुत, गतिमान, वेगवान, बल वाला प्रभु (इषितः) सबका प्रेरक होकर (रजः तिरः मथायद्) समस्त लोकों और प्रकृति के परमाणुओं और तेज:प्रकाश को भी दूर-दूर तक संचालित कर रहा है। (सः) वह (वेविजानः) सर्वत्र व्यापता हुआ, (मध्वः आ युवते) आनन्द को प्रदान करता है, वह (विभ्युषा मनसा) डरनेवाले मन से (कृशानोः अस्तुः) कृश अति

अल्प प्राणयुक्त जीव को भी सन्मार्ग में चलाने हारा हो।

टिप्पणी—सबसे पहले वा पूर्व परमात्मा की विद्यमानता थी। इससे जाना जाता है कि प्रकृति और जीव; दोनों से पूर्व परमात्मा विद्यमान थे। ये दोनों मानो अनादि नहीं हैं। इस मंत्र से ऐसा बोध होता है।

यह भाव निम्नलिखित सन्तवाणियों से भी प्रकट होता है—

प्रथम एक जो आपै आप। निराकार निर्गुन निर्जाप॥
नहिं तब पाँच तत्त गुन तीनी। नहिं तब सृष्टी माया कीनी॥
नहिं तब आदि अन्त मधि तारा। नहिं तब अंध धुंध उजियारा॥
कहै कबीर विचारि के, तब कछु किरतम नाँहि।
परम पुरुष तहँ आप ही, अगम अगोचर माँहि॥
करता एक अगम है आप। वाके कोई माय न बाप॥
करता के बंधू नहिं नारी। सदा अखंडित अगम अपारी॥
करता कछु खावै नहिं पीवै। करता कबहूँ मरै नहिं जीवै॥
करता के कछु रूप न रेखा। करता के कछु बरन न भेखा॥
जाके जाति गोत कछु नाहीं। महिमा बरनि न जाय मो पाहीं॥
रूप अरूप नहीं तेहि नाँव। बर्न अबर्न नहीं तेहि ठाँव॥
कहै कबीर विचारि के, जाके बरन न गाँव।
निराकार और निर्गुना, है पूरन सब ठाँव॥
करता किर्तिम बाजी लाई। ॐ कार तें सृष्टि उपाई॥
पाँच तत्त तीन गुन साजा। तातें सब किर्तिम उपराजा॥
किर्तिम पाँच तत्त गुन तीनी। किर्तिम सृष्टि जु माया कीनी॥

किर्तिम आदि अन्त मध तारा। किर्तिम अन्ध कूप उजियारा ॥
किर्तिम सर्गुन सकल पसारा। किर्तिम कहिये दस औतारा ॥
(कबीर साहब)

तदि अपना आपु आप ही उपाया।
नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया ॥ अध्याय १०॥
(गुरु नानक साहब)

जंत उपाइ कालु सिरिजंता। (गुरु नानक साहब)

(२०) आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति । कृण्वन्त्सञ्चृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः॥२॥

अ० ३ व० ९ अ० ४ सू० ८४।२ अष्टक ७ मण्डल ९ खण्ड ६ पृष्ठ २५७

भा० — (यः) जो (सोमः) सब जगत का प्रेरक, सञ्चालक, प्रभु परमेश्वर (अमर्त्यः) कभी न मरनेवाला, अविनाशी नित्य होकर (विश्वानि भुवनानि आ तस्थौ) समस्त लोकों और उत्पन्न पदार्थों का अध्यक्ष होकर विराजता है, वह (तानि परि अर्षति) उनको सब ओर से व्यापता है। (सूर्यः उषसं न) सूर्य जिस प्रकार उषा को व्यापता है और (अभिष्टये संवृतं विचृतं कृणोति) चारों ओर व्यापने के लिये जगत को प्रकाश से युक्त और अन्धकार से वियुक्त करता है; उसी प्रकार वह (इन्दुः) चन्द्र के समान आह्लादक, सूर्यवत् देदीप्यमान, जीव के प्रति दयार्द्र (अभिष्टये) जीव की अभीष्ट सिद्धि के लिये (उषसं) प्रेम से चाहनेवाले, उस (संचृतम्) बद्ध जीवगण को

(विचृतं कुर्वन्) बन्धनों से मुक्त करता हुआ (सिषक्ति) उसे अपने साथ पुत्र को माता के तुल्य चिपटा लेता है।

(२१) प्रते धारा मधु मतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान्। पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः॥३१॥

अ० ४ व० १७। ३१ अ० ६ सू० ९७ अष्टक ७ मंडल ९ खंड ६ पृ० ३४४

भा०—हे प्रभो! (यत्) जो तू (पूतः) अति पवित्र स्वरूप होकर (अव्यान् वारान्) अवि अर्थात् प्रकृति के बने समस्त आवरणों को पार करके (अत्येषि) विराजता है। (ते मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन्) तेरी मधुमयी ज्ञानमयी वाणियाँ अति सुखद रूप से प्रकट होती हैं। हे (पवमान) सर्वव्यापक, परम पावन (गोनाम् धाम पवसे) तू अपनी किरणों के तेज के तुल्य अपना ज्ञानवाणियों का तेज प्रदान कर। तू ही (जज्ञानः) प्रकट होकर (सूर्यम् अर्कैः पिन्वः) सूर्य को अपने तेजों से पूर्ण करता है।

टिप्पणी—प्रकृति के बने समस्त आवरणों को पार करके परमात्मा विराजते हैं। उनकी इसी महिमा के कारण गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने उनको —

प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥

कहा है। इसलिये उन्हें सर्वव्यापकता के परे कहना अयुक्त नहीं है।

(२२) आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः॥ ९॥

अ० ५ व० १०। ९ अ० ७ सू० १०६ अष्टक ७ मंडल ९ खंड ६ पृ० ३८५

भा०—हे (नः सुत सः इन्दवः) हमारे उत्पन्न जीव-आत्माओ! आपलोग (वृष्टि-द्यावः) कर्म-बन्धन के विच्छेद के लिये ज्ञान, प्रकाश को प्राप्त करनेवाले और (रीति-आपः) जलों के तुल्य प्राणों को वा प्रकृति को निर्गमन मार्गों में से क्षेत्रिक के तुल्य कर लेने वाले और (स्वर्विदः) सुख प्रकाश को प्राप्त करनेवाले होकर (रयिम्) सुख-प्रदाता, ऐश्वर्यवान प्रभु को लक्ष्य कर (पुनानः) अपने तईं पवित्र होकर (आ धावत) और वेग से आगे बढ़ो।

टिप्पणी — यह मंत्र बतलाता है कि जीवात्माओं को ईश्वर ने उत्पन्न किया है। इसीलिए जीवात्मा भी उपज-ज्ञान से अनादि सिद्ध नहीं होता है।

(२३) अभूर्वौक्षीर्व्यु १ आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत्। द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥ ७॥

अ० ७ व० १६। ७ अ० २ सू० २७ अष्टक ७ मंडल १० खंड ६ पृष्ठ ५५०

भा० — हे प्रभो! परमैश्वर्यवन्! तू (अभूः उ) अजन्मा ही है, जो (औक्षीः) जगत को उत्पन्न करने के लिये, जगत के उत्पादक बीज का वपन करता और उसको मेघवत् सेचन करके बढ़ाता है। तू (आयुः आनट्) समस्त जीव-सर्ग में व्यापक है। (पूर्वः दर्षत् नु) जो पूर्व विद्यमान या पूर्ण शक्तिशाली होता है, वही सबका विदारण करता है, वही सबका विभाग करता है। (अपरः नु दर्षत्) और दूसरा कोई विदारण नहीं कर सकता। (द्वे) ये आकाश और भूमि,

जीव और प्रकृति दोनों (पवस्ते) विस्तृत होकर भी (तं न परि भूतः) उसको नहीं ढाँप सकते (यः) जो (अस्य रजसः पारे विवेष) इस लोक के पार, बाहर भी व्याप रहा है।

टिप्पणी — परमात्मा का सर्वव्यापकता के परे होना इस मंत्र में दृढ़ाया गया है। यथा—प्रकृति मंडल भर सर्व, सर्व में व्यापक सर्वव्यापक और सर्व के बाहर सर्वव्यापकता के परे।

(२४) मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान। यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

अ० ७ व० ४। ९अ० ११ सू० १२१ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृ० ५०२

भा० — (यः पृथिव्याः जनिता) जो भूमि का उत्पादक एवं जो मूल प्रकृति से सृष्टि को रचनेवाला है, वह प्रभु (नः मा हिंसीत्) हमें पीड़ित न करे। (यः च) और जो (सत्यधर्मा) सत्य ज्ञान और प्रकट जगत को धारण करनेवाला है, जो (दिवं जजान) आकाश और सूर्य आदि समस्त लोकों को उत्पन्न करता है। (यः च) और जो (चन्द्राः) सर्वाह्लादकारक (बृहतीः आपः) महान-महान व्यापक नाना तत्त्वों वा प्रकृति के परमाणुओं को भी (जजान) उत्पन्न करता है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप, सर्वकर्त्ता, अद्वितीय देव की हम ज्ञानपूर्वक उपासना करें।

टिप्पणी — परमात्मा प्रकृति के परमाणुओं को भी उत्पन्न करता है, इस कथन से प्रकृति का बनानेवाला परमात्मा सिद्ध होता है।

इसलिये परमात्मा केवल प्रकृति से संसार को ही नहीं रचता है, बल्कि वह प्रकृति के परमाणुओं को भी बनाकर उनसे प्रकृति को भी रचता है।

(२५) न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः
किं चनास ॥ २॥

अ० ७ व०१७। २ अ० १० सू० १२९ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृ० ५३६

भा० — (मृत्युः न आसीत्) उस समय मृत्यु न था, (तर्हि न अमृतम्) और उस समय न अमृत था । अर्थात् जीवन की सत्ता, जीवन का लोप दोनों नहीं थे । (न रात्र्याः प्रकेतः आसीत्) न रात्रि का ज्ञान था और (न अह्नः प्रकेतः आसीत्) न दिन का ज्ञान था । उस तत्त्व का स्वरूप (आनीत्) प्राण शक्ति रूप था, परन्तु (अवातम्) वह स्थूल वायु न था । (तत् एकम्) वह एक (स्वधया) अपने ही बल से समस्त जगत को धारण करनेवाला शक्ति से युक्त था। (तस्मात् अन्यत्) उससे दूसरा पदार्थ (किंचन) कुछ भी (परः न आस) उससे अधिक सूक्ष्म न था ।

उत्तम रीति से ध्यानाभ्यास तथा त्रिकाल सन्ध्योपासना

(२६) तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् । आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीलु शर्म न सूनवे । भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५॥

अ १ व० १२। ५अ० १९ सू० १२७ अष्टक २ मंडल १ खंड २ पृष्ठ ४१

भा०— अग्नि जिस प्रकार सूर्य के अभाव में (नक्तं) रात्रि समय में (दिवातरात्) उत्तम दिन की अपेक्षा भी (सुदर्शतरः) उत्तम रीति से देखने योग्य और अन्यों को भी अपने प्रकाश से दिखानेहारा है, उसी प्रकार (यः) जो ज्ञानवान नायक या गुरु (अप्रायेषु) जीवित, जागृत, शक्तिशाली पुरुष या नवयुवक शिष्य के लिये (दिवातरात् सुदर्शतरः) सूर्य से या दिन के प्रकाश से भी अधिक अच्छी प्रकार दर्शनीय, उज्ज्वल और स्पष्ट मार्गदर्शी है (अस्य) इस महान संसार के (पृक्षम्) सेचनेहारे, जीवनप्रद या सुव्यवस्थित करनेहारे, सर्वत्र संगत, सर्वव्यापक स्वामी, प्रभु की हम (उपरासु) यज्ञवेदियों में अग्नि के समान (उपरासु) समस्त दिशाओं में और भीतरी ध्यानपूर्वक रमण करने योग्य आभ्यन्तर चित्त भूमियों में भी (धीमहि) धारण करें और ध्यान करें । (आत्) और उसके <u>उत्तम रीति से ध्यान करने के</u> अनन्तर ही (अस्य आयुः) उसका परम जीवन वा उसका प्राप्त

होना ही (ग्रभणवत्) सबके ग्रहण योग्य, सबको भीतर लेनेवाला (सूनवे न शर्म) पुत्र के लिये पिता के घर के समान ही सुखद (बीडु) बलवान्, दृढ़ आश्रय हो जाता है। (भक्तम्) परम भजन करने योग्य उस (अभक्तम्) स्वयं किसी की भक्ति न करनेहारे, परमपूज्य, सर्वप्रधान सर्वोच्च (अवः) परम रक्षा-स्वरूप प्रभु को (व्यन्तः) प्राप्त होते हुए (अजराः अग्नयः) उस अजन्मा परमेश्वर में रमण करनेहारे, उसमें अपने आपको समर्पण करनेहारे, ज्ञानी पुरुष और (अजराः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकनेवाले नायक में रमण करनेवाले उस पर पूर्ण प्रसन्न वीर, (अग्नयः) तेजस्वी जन (व्यन्तः) ऐश्वर्यों की कामना करते हुए भी (अजराः) जरा, आदि से रहित, दीर्घजीवी स्थिर या अविनाशी अमृत रूप हो जाते हैं।

टिप्पणी— इस मन्त्र में उत्तम रीति से ध्यान करने का आदेश है।

(२७) इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ७॥

अ० ७ व० १७। ७ अ०११ सू० १२९ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृष्ठ ५३४

भा०—(इयं विसृष्टिः) यह विविध प्रकार की सृष्टि (यतः आबभूव) जिस मूल तत्त्व से प्रकट हुई है (यदि वा दधे) और जो वह इस जगत को धारण कर रहा है (यदि वा न) और जो नहीं धारण करता (यः अस्य अध्यक्षः) जो इसका अध्यक्ष वह प्रभु (परमे व्योमन्) परम पद में विद्यमान है। (सः अङ्ग वेद) हे विद्वन्!

वह सब तत्त्व जानता है (यदि वा न वेद) चाहे और कोई भले ही न जाने।

टिप्पणी— उपर्युक्त मन्त्र से विदित होता है कि आदि की बातें परमात्मा के अतिरिक्त कोई अच्छी तरह नहीं जानते हैं।

वाणी (शब्द) द्वारा ब्रह्मपद की प्राप्ति और इसका अन्य को उपदेश देने की आज्ञा

(२८) वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम्। दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेभिषा पृचीमहि। आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥७॥

अ १ व० १६।७ अ० १९ सू० १२९ अष्टक २ मंडल १ खंड २ पृष्ठ ६३

भा०— हमलोग (चितन्त्या) ज्ञान उत्पन्न करनेवाली (होत्रया) वाणी द्वारा ही (तत्) उस परम श्रेष्ठ, ज्ञान योग्य ब्रह्मपद को (वनेम) प्राप्त करें और उसका अन्यों को उपदेश करें। हे (रयिवः) ऐश्वर्यवान हम (रयिम्) ऐश्वर्य (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य और उसके समान (रण्वं) सुख और ज्ञानप्रद, (सुवीर्यं) उत्तम वीर्यवान (सन्तं) सज्जन पुरुष को भी (वनेम) प्राप्त करें। (सुमन्तुभिः) उत्तम मनन

करने योग्य ज्ञानी और मननशील पुरुषों द्वारा उपदेश प्राप्त करके हम (दुर्मन्मानम्) विपरीत ज्ञान के नाशक एवं दुःख या कठिनता से मनन करने योग्य, दुर्विज्ञेय, परमेश्वर या आत्मा के रूप को (इषा) प्रबल इच्छा या प्रेरणा द्वारा (पृचीमहि) प्राप्त करें, उससे जुड़ जाएँ।(यजत्रं) दानशील या सत्संग करने योग्य उत्तम पुरुष को जिस प्रकार (द्युम्नहूतिभिः) यशसूचक स्तुतियों द्वारा पहुँचाते हैं; उसी प्रकार हम उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान परमेश्वर को भी (सत्याभिः) सत्य, (द्युम्नहूतिभिः) उसके तेजोमय स्वरूप का वर्णन करनेवाली स्तुतियों से (आपृचीमहि) खूब भली प्रकार अपने साथ जोड़ लें, उसको अपने हृदय में योग द्वारा ध्यान कर तन्मय हो जावें ।

(२) इसी प्रकार वीर्यवान, धनैश्वर्यवान, दुष्टों को हिंसक सत्संग योग्य (इन्द्रं) राजा और आचार्य को भी उत्तम ज्ञानों, ज्ञानवानों, यश, अन्न-वर्द्धक क्रियाओं और स्तुतियों सहित मिलें, उससे अपना सम्पर्क या सम्बन्ध बढ़ावें ।

(२९) तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्षधिया कृतान् । अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनपा दैव्यं जनम् ॥ ६॥

अ० १ व० १४ । ६ अ० ४ सू० ५३ अष्टक ८ मण्डल १० खण्ड ७ पृष्ठ ३५

भा०— हे मनुष्य! तू (तन्तुम् तन्वन्) प्रजा शिष्य आदि सन्तान रूप तन्तु को उत्पन्न करता हुआ (रजसः भानुम्) ज्ञान-प्रकाशक, समस्त लोक के प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी गुरु वा प्रभु का (इहि)

अनुगमन कर। और (धिया कृतान्) हमको सत्कार और बुद्धि से बनाये गये (ज्योतिष्मतः पथः) सूर्य के उज्ज्वल मार्गों की (रक्ष) रक्षा कर, अथवा (धिया) बुद्धि वा यत्न से तू (कृतान् पथः) बनाये गये मार्गों को (ज्योतिष्मतः) प्रकाश से युक्त बनाये रख, मार्गों पर अन्धेरा न होने दे।(जोगुवाम्) उपदेष्टा जनों के (अनुल्बणं) अति सुखदायी, कभी कष्ट न देनेवाले (अपः) सत्कर्म को (वयत) कर।तू सदा (मनुः भव) मननशील हो और (जनं दैव्यं जनय) मनुष्यों को देव प्रभु का उपासक बना।

टिप्पणी—दूसरों को बोध देकर ईश्वरोपासना में लगाने का आदेश इस मन्त्र में है।

परमपद तक पहुँचे हुए का अनुकरण और अनुसरण

(३०) तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सान्वीयते। तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥१॥

अ० २ व०१४।१ अ०२१ सू०१४५ अष्टक २ मंडल १ खंड २ पृष्ठ १६८

भा०—हे विद्वान पुरुषो! (सः जगाम) वह विद्वान परमपद तक पहुँचा है, (सः वेद) वह ही उस परमपद को जानता और प्राप्त

करता है ।(सः) वह ही (चिकित्वान् ईयते) विशेष ज्ञानवान होकर ज्ञेय ध्येय परमपद तक जाता है (सः नु ईयते) वही अन्यों द्वारा अनुसरण और अनुकरण करने योग्य है ।(तस्मिन्) उसके ही आश्रय पर (प्रशिषः) उत्तम शासन और (तस्मिन्) उसके ही आश्रय पर (इष्टयः) यज्ञ, दान आदि उत्तम कर्म और सत्संग सब मैत्रीभाव और लेन-देन आदि निर्भर है ।(सः) वह (वाजस्य) समस्त ज्ञान अन्न और वेग का और (शवसः) बलों का स्वामी है और वही (शुष्मिणः) बलवान पुरुषों का भी स्वामी है ।

टिप्पणी— इस मन्त्र में परम पद तक पहुँचे हुए महापुरुष का अनुकरण और अनुसरण करने का आदेश है ।इससे प्रथम लिखित मन्त्र में अन्तर्नाद में लीन हुए को परमपद का मिलना कहा गया है। अतएव नादानुसन्धान करनेवालों का अनुकरण और अनुसरण करने का आदेश वेद में है, इसमें सन्देह नहीं है ।

-:: गोवध निषेध ::-

(३१) हिङ्कृण्वती वसूपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मन-साभ्यागात् । दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥

अ० ३ व० १९। २७ अ०२२ सू०१६४ अष्टक २ मण्डल १ खंड २ पृष्ठ २९०

भा०— जिस प्रकार (वत्सम् इच्छन्ती) अपने बछड़े की प्यारी

गौ (हिंकृण्वती) अपने वत्स के प्रति प्रेमहिंकार शब्दपूर्वक उसको चूमती हुई (मनसा अभि आ अगात्) चित्त से स्नेहपूर्वक गृह के बछड़े के समीप आ जाती है और वह (वसूनां) मनुष्यों के (वसुपत्नी) अन्न, दुग्ध, घृत आदि सब ऐश्वर्यों और बाल-वृद्धादि सबको पालने वाली होती है । (इयं अघ्न्या) वह कभी वध न करने योग्य एवं सदा पालने योग्य होकर (अश्विभ्यां) स्त्री-पुरुषों के लिये (पयः दुहाम्) दूध प्रदान करती है और (सा महते सौभगाय) वह बड़े भारी सौभाग्य की वृद्धि के लिये (वर्धतां) वृद्धि को प्राप्त हो । उसी प्रकार (वसूनां वसुपत्नी) समस्त लोकों में बसनेवाले जीवों को पालन करनेवाली और (मनसा) ज्ञानपूर्वक (वत्सम् इच्छन्ती) बसे हुए इस लोक रूप वत्स को प्रेम चाहती हुई, प्रभु की परमेश्वरी शक्ति (हिंकृण्वती) वेद-द्वारा ज्ञानोपदेश करती हुई, (अभि आ अगात्) साक्षात् दिखाई देती है । (इयं) वह (अघ्न्या) अविनाशिनी होने से 'अघ्न्या' है। वह (अश्विभ्यां) इन्द्र, वायु और आत्मा और मन दोनों को (पयः दुहाम्) पुष्टिप्रद सामर्थ्य प्रदान करती है । उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (वर्धताम्) सबसे बढ़कर है और वह हमें बढ़ावे ।

टिप्पणी— इस मन्त्र में गोवध का निषेध है और उसके पालन करने की आज्ञा है ।

-:: इन्द्रियों के ज्ञान से आत्मा परे ::-

(१६) न वि जानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि । यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥३७॥

अ० ३ व०२१। ३७ अ०२२ सू०१६४ अष्टक २ मंडल १ खण्ड २ पृष्ठ २९९

भा०—(यत् इव) जिस तरह का (इदम् अस्मि) यह मैं हूँ सो (न विजानामि) मैं विशेष रूप से नहीं जानता हूँ । मैं तो वस्तुतः (मनसा) अपने मननशील, मनोरूप अन्तःकरण से (संनद्धः) अच्छी प्रकार बँधा हुआ और (निण्यः) उसी में छिपा हुआ (चरामि) विचरता हूँ । या समस्त सुख-दुःखादि को भोगता हूँ । और (यदा) जब (ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमेश्वर के संकल्प से उत्पन्न (प्रथमजाः) सबसे प्रथम उत्पन्न ज्ञान या सर्वश्रेष्ठ विकास पंच तन्मात्राएँ, विषयग्राही इन्द्रिय रूप ज्ञान साधन (मा आ अगन्) मुझे प्राप्त होती हैं, (आत् इत्) तभी (अस्याः) इस (वाचः) वाणी के द्वारा (भागम्) भजन करने योग्य परमब्रह्म अथवा (वाण्याः भागं) वेदवाणी के भाग अर्थात् प्रतिपाद्य सत्यज्ञान को मैं (अश्नुवे) प्राप्त करता हूँ । (अथर्व० ९। १० १५) ।

टिप्पणी—सांसारिक अथवा अनात्म पदार्थों का ज्ञान मन, बुद्धि और इन्द्रियों से होता है, परन्तु 'यह मैं हूँ' अर्थात् मैं आत्मस्वरूप में यह हूँ ; ऐसा ज्ञान, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से नहीं होता है । इसलिए

इस मन्त्र से यह बोध होता है कि शरीरस्थ आत्मा इन्द्रियों के ज्ञान से परे है। यही इस मन्त्र में कहा गया है।

-:: अपने अभिमुख दृष्टियोग ::-

(३३) अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृणवन्तु वाघतः ॥ २ ॥

अ० २ व० २०।२ अ० २ सू० ३७ अष्टक ३ मंडल ३ खंड ३ पृष्ठ १९२

भा०— हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तेजस्वी पुरुष! हे (शतक्रतो) अनेक उत्तम प्रज्ञाओं और कर्मोंवाले! (वाघतः) जो वाणी द्वारा दोषों का नाश करनेवाले और शास्त्रों और उत्तम उपायों को धारण करनेवाले विद्वान पुरुष हैं (ते) वे (मनः) मन, ज्ञान को और (चक्षुः) आँखों वा दर्शन शक्ति को (अर्वाचीनं) अपने अभिमुख वृद्धिशील (कृण्वन्तु) करें।

(२) परमात्म पक्ष में — हे इन्द्र! परमेश्वर (वाघतः) विद्वान लोग अपने मन और भीतरी चक्षु को (ते अर्वाचीनं कृण्वन्तु) तेरे प्रति प्रवृत्त करें।

टिप्पणी— इस मन्त्र-द्वारा अपने अन्दर में अभिमुख (सामने) दृष्टियोग करने की आज्ञा है।

वीर्यसंचय, दमशील का महत्त्व और ऊर्ध्वरेता।

(३४) आदिद्ध नेमे इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोडाशं रिरिच्यात्। आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं अजध्यै ॥ ५॥

अ० ६ व० ११। ५ अ० ३ सू० २४ अष्टक ३ मंडल ४ खंड ३ पृष्ठ ४९७

भा०—(आत् इत्) अनन्तर (नेमे) कुछ जन (ह) निश्चय से (इन्द्रियं) इन्द्र, आत्मा के ऐश्वर्य को (यजन्ते) प्राप्त करते हैं और (आदित्) अनन्तर (पक्तिः) परिपाक जिस प्रकार (पुरोडाशं) उत्तम अन्न को (रिरिच्यात्) अधिक गुण सम्पन्न कर देता है, उसी प्रकार (पक्तिः) ज्ञान और तप की परिपक्वता (पुरोडाशं) प्रस्तुत किये आत्मा को (रिरिच्यात्) अधिक शक्तिशाली बना देता है। (आत् इत्) और अनन्तर (सोमः) शरीर के ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला वीर्य का वीर्यवान पुरुष (असुष्वीन्) प्राणों द्वारा चलनेवाले इन्द्रियगण को (वि पपृच्यात्) विषय सम्पर्क से शिथिल करने में समर्थ होता है। (आत् इत्) उसके अनन्तर वह (वृषभं) अन्तःकरण सुखों की वर्षा करनेवाले धर्म मेघ रूप प्रभु को (यजध्यै) उपासना करने और प्राप्त करने के लिये (जुजोष) प्रेमपूर्वक चाहने लगता है। (२) राष्ट्रपक्ष में —नियन्ता लोग इन्द्र, राजा के राष्ट्र को सुसंगत सुव्यवस्थित करें। परिपाक उत्तम अन्न को और गुणकारी करें, खेती पके पर काटी जाय। (असुष्वीन्) प्राणी जनों को (सोमः) अन्न, औषधि

रस विशेष रूप से पुष्ट करें और लोग बलवान ऐश्वर्य दाता, प्रबंधक को प्राप्त करने में प्रेम-भाव दर्शावें।

टिप्पणी— इस मंत्र में वीर्य वा वीर्यवान पुरुष दमशील होकर ईश्वर-दर्शन में प्रेम करने लगता है, इसी बात का वर्णन है।

(३५) सहस्त्रे पृषतीनामधिश्चन्द्रं बृहत्पृथु । शुक्रं हि-रण्यमाददे ॥११॥

अ० ४ । व०४७। ११ अ० ७ सू० ६५ अष्टक ६ मंडल ८ खंड ५ पृष्ठ ६२५

भा०— (पृषतीनाम् सहस्त्रे अधि) सहस्त्रों सुखवर्षक वाणियों या नाड़ियों के भी ऊपर सहस्त्र नाड़ियों से युक्त मूर्धा में (बृहत् पृथुः) बड़े विस्तृत (चन्द्रं) आह्लादजनक (शुक्रम् हिरण्यं) हितकारी सुखप्रद कान्तियुक्त वीर्य को (आददे) धारण करूँ, मैं ऊर्ध्वरेता होऊँ।

-:: सत्संग यज्ञ ::-

(३६) ई जे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश । एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नां हो मर्त्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥२॥

अ० ५ व० २ । २ अ० १ सू० ३ अष्टक ३ मंडल ६ खंड ४ पृष्ठ १८५

भा०— जो पुरुष (यज्ञेभिः) दान, देवपूजन और सत्संगों से (ई

जे) यज्ञ करता है, (शमीभिः शशमे) उत्तम कर्मों से अपने को शान्त करता है वा उत्तम शान्तिजनक उपायों और स्तुतियों से अपने को शान्त करता या प्रभु की स्तुति करता है और जो (ऋधद्वाराय) सम्पन्न, समृद्ध करनेवाले—धनों और व्यवहारों से युक्त (अग्नये) ज्ञानवान पुरुष के हित के लिये (ददाश) अग्नि में आहुति के तुल्य ही दान करता है।(एव चन) इस प्रकार निश्चय से (तं) उसको (यशसाम् अजुष्टिः) यशों और अन्नों का अभाव (न नशते) प्राप्त नहीं होता, (तं मर्त्तं) उस मनुष्य को (अंहः न नशते) पाप भी स्पर्श नहीं करता और उसको (प्रदृप्तिः न नशते) भारी दर्प, घमण्ड वा मोह भी नहीं होता। अथवा अन्नों की कमी, पाप वा दर्प आदि उसे नष्ट नहीं कर सकते।

टिप्पणी— इस मंत्र से विदित होता है कि सत्संग करना भी यज्ञ करना है।

-:: निर्गुण और सगुण उपासना ::-

(३७) त्वामीडे अध द्विता भरतो वाजिभि शुनम्। ईजे यज्ञेषु यज्ञियम्॥४॥

अ० ५ व०२१।४ अ०२ सू० १६ अष्टक ३ मण्डल ६ खंड ४ पृष्ठ २४५

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक! (भरतः) मनुष्य मात्र (शुनम्) सुखप्रद सर्वव्यापक (त्वाम्) तुझको (द्विता) अर्थात् सगुण और

निर्गुण दोनों प्रकारों से ही (वाजिभिः) ज्ञानयुक्त उपायों से (ईडे) उपासना करे । और (यज्ञेषु) यज्ञों में (यज्ञियम्) पूज्य तुझको (ईजे) प्राप्त होता है ।

टिप्पणी—इस मन्त्र से यही ज्ञात होता है कि सगुण और निर्गुण; दोनों रूपों में परमात्मा की उपासना वेदानुकूल है ।

मानस जप और मानस ध्यान स्थूल सगुण रूप उपासना है । एकविन्दुता वा अणु से भी अणु रूप प्राप्त करने के लिए अभ्यास करना तथा आन्तरिक विविध ज्योतियों का दर्शन सूक्ष्म सगुण रूप उपासना है, सारशब्द अर्थात् शब्दब्रह्म-स्फोट[1] के अतिरिक्त दूसरे सब अनहद नादों का ध्यान सूक्ष्म, कारण और महाकारण सगुण अरूप उपासना है और सारशब्द का ध्यान निर्गुण अरूप उपासना है । सम्पूर्ण उपासना की यहीं समाप्ति है । उपासना को सम्पूर्णतः समाप्त किये बिना शब्दातीत पद (अनाम) तक अर्थात् परम प्रभु सर्वेश्वर तक की पहुँच प्राप्त कर परम मोक्ष का प्राप्त करना अर्थात् अपना परम कल्याण बनाना पूर्ण असम्भव है ।

पतञ्जलि ने महाभाष्य में शब्द की परब्रह्म से समता दिखाई है ।

चत्वारि श्रृंगा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्ता सोऽअस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवोमर्त्यां २ आविवेश ॥

अ० १७ मन्त्र ९१।१ खण्ड १ (यजुर्वेद संहिता)

१. अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते । (योगशिखोपनिषद् अध्याय ३) — अक्षर (अनाश) परम नाद को शब्दब्रह्म कहते हैं ।

४ सींग—नाम, आख्यात (क्रियापद), उपसर्ग और निपात; तीन पद—भूत, भविष्यत् और वर्तमान, दो शिर—शब्द नित्य और अनित्य। सात हाथ—सात विभक्तियाँ। यह शब्द तीन स्थान पर बद्ध है—छाती में, कंठ में और शिर में। सुनने से सुख का वर्षण करता है, वह शब्द करता, उपदेश देता है और ध्वनि रूप होकर समस्त मरणधर्मा प्राणियों में विद्यमान है।

(पतंजलि मुनि। व्याकरण महाभाष्य अ० १)

'वेद संहिता, टीकाकार आर्य पंडित जयदेव शर्मा, अजमेर'।

इस मन्त्र की व्याख्या में महाभाष्यकार पतंजलि मुनि ने कहा है कि शब्द रूपी महान देव मनुष्यों में आकर प्रविष्ट हुआ है अर्थात् परब्रह्म स्वरूप और अन्तर्यामि रूप शब्द मनुष्यों में पैठ गया है। जो पुरुष व्याकरण शास्त्र के ज्ञानपूर्वक शब्दों को संस्कार के साथ व्यवहार में लाता है, वह पाप-रहित हो जाता है, और इस अन्तः प्रविष्ट शब्दब्रह्म के साथ पूर्णरूप से मिल जाता है।

यही अन्तःप्रविष्ट नित्य शब्द सम्पूर्ण जगदादि प्रपंच को विस्तारित करता है। यह शब्दरूप ब्रह्म आदि और अन्त-रहित है। यह अक्षर है अर्थात् विकार-शून्य है। यही जगत के रूप में भासित होता है। इसी शब्द-ब्रह्म से जगत की रचना होती है। इस विषय को महावैयाकरण भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड में कहा है; यथा—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥

अर्थात् अवयव-रहित (खण्ड-रहित) नित्य शब्द जिसको वैयाकरण स्फोट कहते हैं, संसार का अनादि कारण है और ब्रह्म ही है । वह ब्रह्म सत्ता सभी शब्दों का वाच्य है । वह स्फोट रूप वाचक शब्द से भिन्न नहीं है । जो भेद दीख पड़ता है, वह 'आवरण' से ही या कल्पना से ही । जो पुरुष शब्दब्रह्म को ठीक-ठीक अवगत कर लेता है, वह परब्रह्म को पाता है अर्थात् उसमें अवस्थित होता है।'[१]

कुछ लोग सब शब्दों को नित्य मानते हैं । कुछ लोग सब शब्दों को आकाश का गुण कहकर अनित्य ही मानते हैं, परन्तु सन्तवाणी के अनुकूल नित्य और अनित्य; दोनों प्रकार के शब्द हैं । नित्य शब्द केवल एक ही है, जिसको सन्तगण आकाश का गुण नहीं कहते हैं; परन्तु जिसकी उत्पत्ति को स्वयं परम प्रभु परमात्मा से ही बतलाते हैं । यह विचार योगशिखोपनिषद् में उपर्युक्त आर्य पंडित श्री जयदेव शर्मा तथा संस्कृत प्रोफेसर स्वर्गीय रामनारायण शर्मा के अर्थों से पूर्णरूपेण मिलता है । सन्तगण इस शब्द को परमप्रभु परमात्मा का निर्गुण नाम भी कहते हैं । नित्य और अक्षर होने के कारण इसको निर्गुण नाम वा निर्गुण शब्द अवश्य कहना चाहिए । इसी शब्द से सब सृष्टि हुई है, सन्तगण यह भी मानते हैं ।

---

[१] स्वर्गीय प्रोफेसर रामनारायण शर्मा, भूतपूर्व अधीक्षक, संस्कृत एसोसिएशन, बिहार तथा प्रधान प्रोफेसर (Head of department) संस्कृत विभाग, लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर ।

गोरखपुर से निकलनेवाले संवत् १९९३ के वेदान्तांक, पृष्ठ २७० के शब्दाद्वैतवाद और नादानुसन्धान शीर्षक लेखों से विदित होता है कि संसार की रचना शब्द से हुई है। यह श्रीमदाद्यशंकराचार्य भी मानते हैं और वह नादानुसन्धान की स्तुति करते हुए बतलाते हैं कि इस साधन के द्वारा विष्णु का परमपद अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है।

नादानुसन्धान, पृ० २६१

लेखक — स्वामीजी श्री एकरसानन्दजी सरस्वती महाराज। भगवान शंकराचार्यजी ने मन के लय का सर्वोत्तम साधन—नादानुसन्धान, अपने 'योगतारावलि' ग्रन्थ में नीचे के श्लोकों में बतलाया है—

सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयावधानानि वसन्ति लोके।
नादानुसन्धानसमाधिमेकं मन्यामहे मान्यतमं लयानाम् ॥
नादानुसन्धान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महे तत्त्वपदं लयानाम्।
भवत्प्रसादात् पवनेन साकं विलीयते विष्णुपदे मनो मे ॥
सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवानुसन्धेयो योगसाम्राज्यमिच्छता ॥

योगशास्त्र के प्रवर्तक भगवान शिवजी ने मन के लय होने के सवा लक्ष साधन बतलाये हैं, उन सबमें नादानुसन्धान सुलभ और श्रेष्ठ है। हे नादानुसन्धान! आपको नमस्कार है, आप परमपद में स्थित कराते हैं, आपके ही प्रसाद से मेरा प्राणवायु और मन—ये दोनों विष्णु के परमपद में लय हो जायेंगे। योग-साम्राज्य में स्थित होने

की इच्छा हो, तो सब चिन्ताओं को छोड़कर सावधान हो एकाग्र मन से अनहद नादों को सुनो।

शब्दाद्वैतवाद, पृ० २७०

(लेखक श्री वी.कुटुम्ब शास्त्री)

भर्तृहरि ने अपने प्रसिद्ध 'वाक्यपदीय' में शब्दाद्वैत का प्रवर्तन किया। इस शब्दाद्वैतवाद का ही दूसरा नाम स्फोटवाद वा प्रणवनाद है।

शब्द तत्त्व विश्व का कारण है और उसकी एकता शाङ्कर अद्वैत ब्रह्म से की जाती है। केवल शुद्ध ब्रह्म के बदले शब्दब्रह्म का प्रयोग करते हैं। वेद भी इसी तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं कि इस विश्व का कारण शब्द ही है—

वागेवार्थं पश्यति वाग्ब्रवीति वागेवार्थं सन्निहितं सन्तनोति।
वाचैव विश्व बहुरूपं निबद्धं तदेतदेकं प्रविभज्योपभुङ्क्ते॥
और—वागेव विश्वा भुवनानि यज्ञे वाच इत्सर्वममृतं मर्त्यं च।

(D अर्थ—शब्द के द्वारा ही अर्थ देखते हैं, शब्द को ही बोलते हैं, शब्द में ही मिले हुए अर्थ का विस्तार करते हैं, शब्द के द्वारा ही यह संसार नाना रूपों में बँटा हुआ है, उस बँटे हुए से एक भाग

D वेदान्ताङ्क में अर्थ नहीं दिया हुआ है, यह अर्थ पं० कमलाकान्त उपाध्याय, व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य, साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, हिन्दीरत्न, संगीत सुधाकर, हेड पं०एस०एस० इन्स्टिच्यूशन, भागलपुर से कराकर छापा गया है।

लेकर हमलोग उपभोग करते हैं। और—शब्द से ही विश्व विकसित हुआ, शब्द ही अमृत और मृत्युस्वरूप है। यहाँ श्रुति कह रही हैं कि विश्व शब्द से विकसित हुआ।

शङ्कराचार्य भी यही मानते हैं कि संसार की रचना शब्द से हुई है, जो उसके अनुसार उपादान कारण है—

न चेदं शब्दप्रभवत्वं ब्रह्मप्रभवत्वं बहूपादानकारणत्वाभिप्रायेण।

Dइस शब्द की उत्पत्ति का ब्रह्म की उत्पत्ति के समान उपादान कारण नहीं है।

पुनः गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज के निम्नलिखित चौपाइयों से भी विदित होता है कि 'रामनाम' निर्गुण है।

'बंदउँ राम नाम रघुवर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥
विधि हरिहर मय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।'

जाके लगी अनहद तान हो, निरवान निरगुन नाम की ॥ १ ॥
जिकर करके सिखर हेरे, फिकर रारंकार की ॥ २ ॥

(जगजीवन साहब)

निरगुन निरमल नाम है, अवगत नाम अवंच ।
नाम रते सो धनपती, और सकल परपंच ॥

(गरीबदासजी)

सन्तो सुमिरहु निर्गुन अजर नाम। सब विधि पूंजी सुफल काम॥१॥

(दरिया साहब, बिहारी)

Dइसके पहले के फुटनोट के अनुकूल ही इस अर्थ के विषय में भी जानिये।

शब्द तत्तु बीर्ज संसार । शब्दु निरालमु अपर अपार ॥८॥
शब्द विचारि तरे बहु भेषा । नानक भेदु न शब्द अलेषा ॥५८॥
शब्दै सुरति भया प्रगासा । सब कोइ करै शब्द की आसा ॥
पंथी पंखी सिऊँ नित राता । नानक शब्दै शब्दु पछाता ॥६१॥
हाट बाट शब्द का खेलु । बिनु शब्दै क्यों होवै मेलु ।
सारी स्त्रिष्टि शब्द के पाछै । नानक शब्द घटै घटि आछै ॥६२॥

(गुरु नानक)

साधो शब्द साधना कीजै ।
जेहि शब्द से प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै ॥ टेक ॥
शब्दहि गुरू शब्द सुनि सिष भे, शब्द सो बिरला बूझे ।
सोई सिष्य सोई गुरू महातम, जेहि अंतर गति सूझे ॥१॥
सब्दै वेद पुरान कहत हैं, सब्दै सब ठहरावै ।
सब्दै सुरमुनि संत कहत हैं, सब्द भेद नहिं पावै ॥२॥
सब्दै सुनि-सुनि भेष धरत हैं, सब्द कहै अनुरागी ।
षट दरसन सब सब्द कहत हैं, सब्द कहै बैरागी ॥३॥
सब्दै माया जग उतपानी, सब्दै केरि पसारा ।
कहै कबीर जहँ सब्द होत है, तवन भेद है न्यारा ॥४॥

(कबीर साहब)

ओ३म् सयोजत उरुगास्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमिते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्म शृंगो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥

सा० उ० अ० ८ मं० ३

सारांश—इस मंत्र के द्वारा वेद भगवान उपदेश करते हैं कि हे

मनुष्यो! हाथ, पैर, गुदा, लिंग, रसना, कान, त्वचा, आँखें, जिह्वा, नाक और मन-बुद्धि आदि इन्द्रियों के द्वारा ईश्वर को प्रत्यक्ष करने की चेष्टा करना झूठ ही एक खेल करना है; क्योंकि इनसे वह नहीं जाना जा सकता। वह तो इन्द्रियातीत है। हाँ, वह पूर्व मंत्रोक्त परमहंस योगी, उस अनाहत नाद से सम्पन्न परमात्मा को, जिसकी ज्योति शरीर के बाहर और भीतर चन्द्र सूर्यादि अनेकों लोक-लोकान्तरों में तेज और नाना प्रकार की ज्योतियाँ प्रकट करती है, और उस सोम को जो विस्पष्ट प्रकाश से युक्त होकर दिन और रात प्रकाशित होता है, प्राप्त करते हैं।

वेद के इस मन्त्र से पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि शब्द से हुई है।

प्रकाशमय प्रभुपद वा मूर्धा की ओर आरोहण

(३८) मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः अवदस्यूँ-
रधूनुथा ॥ १४ ॥

अ० १ व० १६। १४ अ० ३ सू० १४ अष्टक ६ मंडल ८ खंड ५ पृष्ठ ३१५

भा०— हे (इन्द्र) सत्यदर्शिन्! शत्रुहन्तः! तू (मायाभिः) नाना बुद्धियों से (उत्-सिसृप्सतः) ऊपर जाना चाहते हुए और (द्याम्) तेजोयुक्त प्रभुपद वा शिरोभाग के मूर्धा स्थान की ओर (आरुरुक्षतः) आरोहण करनेवाले सज्जनों की रक्षा कर और (मायाभिः) छल-कपटादि से ऊँचे जानेवाले (द्याम्) भूमि राज्य पर (आरुरुक्षतः) आरूढ़ होनेवाले (दस्यून् अव अधूनुथाः) दस्युओं को नीचे गिरा

दे। अर्थापत्ति के बल से यहाँ सज्जनों को वृद्धि करने का अभिप्राय है।

टिप्पणी—इस मन्त्र में योगी की रक्षा करने की प्रार्थना है। मूर्धा स्थान की ओर आरोहण करनेवाला योगी होता है।

-:: ब्रह्म और जीव में अभेद का संकेत ::-

(३९) यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः।
सहसः सुनवाहुत ॥ २५ ॥

अ०१ व०३३। २५अ० ३ सू०१९ अष्टक ६ मंडल ८ खंड ५ पृष्ठ ३४७

भा०— जिस प्रकार आहुतिवाले अग्नि में जो कुछ पड़ता है, वह अग्नि ही हो जाता है। उसी प्रकार हे (सहसः सूनो) बल से उत्पन्न करने, प्रेरनेवाले, हे (आहुत) उपासना योग्य! (अग्ने) ज्ञानवन् वा अग्निवत् तेजस्विन्! हे (मित्र-महः) स्नेहवान मित्रों से पूजनीय, मित्रों के आदर करनेहारे! (यत्) जो (मर्त्यः) मनुष्य (अहं त्वं स्याम्) मैं तू हो जाऊँ, इस प्रकार उपासना करता है, वह भी (अमर्त्यः) अविनाशी वा अन्य साधारण मरणधर्मा प्राणियों से भिन्न तेरे समान ही हो जाता है।

टिप्पणी — इस मन्त्र में ब्रह्म और जीव में अभेद भाव होने की झलक है।

(४०) यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।
युष्टे सत्या इहाशिवः ॥ २३ ॥

अ० ३ व० ४०। २३ अ० ६ सू० ४४ अष्टक ६ मंडल ८ खंड ५ पृष्ठ ५२०

भा०— हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे प्रभो! (यद्) यदि (अहं त्वं स्याम्) मैं तू हो जाऊँ (त्वं वा घा अहम् स्याः) और तू मैं बन जावे, तब (इह) इस लोक में (ते आशीषः सत्याः स्युः) तेरी कामनाएँ, वा तेरे विषय में मेरी भावनाएँ सत्य हों।

टिप्पणी—इस मन्त्र में भी जीव के ब्रह्म बन जाने की बात कही गयी है।

उपासित होकर ईश्वर हृदय में प्रकट होता है

(४१) स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति।
विघ्न न्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

अ० ८ व० २७। १ अ० २ सू० ३७ अष्टक ६ मंडल ९ खंड ६ पृष्ठ ९२

भा०— (सः) वह (वृषा) समस्त सुखों का वर्षक (सोमः) सकल जगत का उत्पादक प्रभु (सुतः) उपासित होकर (पवित्रे) पवित्र हृदय में (अर्षति) प्रकट होता है। वह (देवयुः) उपासकों का स्वामी (रक्षांसि) सब विघ्नों और दुष्टों का (विघ्नन्) विनाश करनेहारा होता है।

टिप्पणी—परमात्मा—ईश्वर साधक भक्त को उसके अन्दर में दर्शन देता है।

-:: परमात्मा पवित्र हृदय में प्रकट होता है ::-

(४२) स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः। अभि योनिं कनिक्रदत्॥ २॥

अ० ८ व० २७। २ अ० २ सू० ३७ अष्टक ६ मंडल १ खंड ६ पृष्ठ ९२

भा० — (सः) वह (विचक्षणः) विशेष रूप से देखनेवाला, (हरिः) सर्वदुःखहारी, (योनिम् अभि कनिक्रदत्) विश्वरूप गृह को व्यापता हुआ (धर्णसिः) धारण करनेवाला (पवित्रे अर्षति) पवित्र हृदय में भी प्रकाशित होता है।

टिप्पणी—परमात्मा पवित्र हृदय में प्रकाशित होता है।

सूचै भाड़ै साँचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी॥

(गुरु नानक)

-:: परमात्मा तक आरोहण ::-

(४३) आ योनिमरुणो रुहद् गमदिन्द्रं वृषा सुतः। ध्रुवे सदसि सीदति।

अ० ८ व० ३०। २ अ० २ सू० ४० अष्टक ६ मंडल ९ खंड ६ पृष्ठ ९७

भा०— (अरुणः) तेजोमय, अप्रतिहत सामर्थ्यवाला (वृषा) बलवान सुखवर्षी (सुतः) अति पवित्र, अभिषिक्तवत् स्वच्छ (जीव योनिम्) आश्रय रूप (इन्द्रम् आ रुहत्) उस ऐश्वर्यवान

प्रभु को प्राप्त हो, उस तक चढ़ जावे और (सदसि) राजसभा में सभापति के समान उस (ध्रुवे) ध्रुव, निष्प्रकम्प, (सदसि) शरण-योग्य परमेश्वर में (सीदति) स्थिति प्राप्त करे।

टिप्पणी—इस मन्त्र में परमात्मा तक अति पवित्र जीव का, ऊपर आरोहण (चढ़ाई) होने तथा परमात्मा के ध्रुव वा निश्चल होने का वर्णन है।

कबीर साहब, गुरु नानक साहब तथा पलटू साहब आदि सन्तों ने भी परमात्म-स्वरूप को ध्रुव बतलाया है और उस तक आरूढ़ होने का विचार दिया है—

'आवै जाय सो माया साधो, आवै जाय सो माया ।
है प्रतिपाल काल नहि ताके, ना कहुँ गया न आया ॥'
'ऊँचा महल अगमपुर जहँवा, सन्त समागम होय ।
जो कोइ पहुँचै वही नगरिया, आवागमन न होय ॥'
'कबीर का घर शिखर पर, जहाँ सिलहली गैल ।
पाँव न टिकै पिपीलिका, पंडित लादै बैल ॥'
'डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकास ।
गगन मंडल में घर किया, हीरा पाया दास ॥'

(कबीर साहब)

'निहचल एक सदा सचु सोई। पूरे गुर ते सोझी होई ॥'
'तारा चढ़िआ लंमा किउ नदरि निहालिया राम ॥'

(गुरु नानक)

'रूह करे मेराजु कुफर का खोलि कुलाबा॥'

(पलटू साहब)

'चलो चढ़ो मन यार महल अपने।'

(दूलन दासजी)

'चढ़त-चढ़त अस चढ़ि गये, जहाँ अकास इकईस।
लगे चरित देखन सभे, भयो सो ध्यानिक ईस॥'

(जगजीवन साहेबजी के शिष्य नवल दासजी)

'निहचल सदा चलै नहिं कबहूँ, देख्या सब में सोई।
ताही सूँ मेरा मन लागा, और न दूजा कोई॥'

(सन्त दादू दयालजी)

विशेष जानकारी के लिये 'सत्संग-योग' तथा अन्यान्य सन्त वाणियों को पढ़कर देखिये।

-:: धर्म के दस लक्षण ::-

(४४) स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा। व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ॥ ४॥

अ० २ व० २३। ४ अ० ४ सू० ७० अष्टक ७ मंडल ९ खंड ६ पृष्ठ २०७

भा०— (सः) वह विद्वान पुरुष (दशभिः सुकर्मभिः) <u>दसों धर्म के लक्षण धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध अथवा पाँच यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय,</u>

ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और पाँच नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान; इन दश (सुकर्मभिः) शुभ कर्मों द्वारा (मृज्यमानः) पवित्र, स्वच्छ होता हुआ, (मध्यमासु) मध्यम, बीच की (मातृषु) मातृ-तुल्य प्रेमयुक्त व्यक्तियों गुरुजनों के बीच (प्रमे) उत्तम ज्ञान प्राप्त करने के लिये (प्र सचा) अच्छी प्रकार स्थिरता से रहे। वह (व्रतानि पानः) व्रतों यम-नियमादि पालनीय कर्मों को पालन करता हुआ (नृचक्षाः) नेता जनों वा मनुष्यों वा अपनी आत्मा को देखता हुआ (विशौ उभे अनु) दोनों उत्तम और निकृष्ट स्थावर-जंगम वा मानव-तिर्यङ् दोनों प्रजाओं को बीच में (अमृतस्य चारुणः) अमृत, अविनाशी भोक्ता आत्मा का (पश्यते) साक्षात् करता है। अथवा—(चारुः अमृतस्य व्रतानि पानः उभे विशौ अनु पश्यते) वह शासकवत् अमृत, सर्वव्यापक प्रभु के नियमों का पालन करता हुआ दोनों प्रजाओं पर कृपादृष्टि रखता है।

सत्संग-तप से पवित्र नहीं होनेवाले को ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती है।

(४५) पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥ १॥

अ० ३ व० ८। १ अ० ४ सू० ८३ अष्टक ७ मंडल ९ खंड ६ पृष्ठ २५३

भा०— हे (ब्रह्मणः पते) वेद ज्ञान के स्वामिन्! हे महान ब्रह्माण्ड, अपार बल और ज्ञान के पालक प्रभो! (ते) तेरा (पवित्रम्) परम पावन ज्ञान और तेज (विततं) विस्तृत रूप से व्यापक है। तू (प्रभुः) सबका स्वामी, शक्तिमान होकर (विश्वतः) सब ओर (गात्राणि परि एषि) संसार के समस्त अवयवों को व्याप रहा है (अतप्त-तनूः) जिसने अपने को ब्रह्मचर्य, सत्य-भाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्संगादि तपश्चर्या से तप्त नहीं किया, वह (आमः) कच्चा, अपरिपक्व वीर्य और मतिवाला पुरुष (तत्) उस परम पावन स्वरूप ब्रह्म को (न अश्नुते) नहीं प्राप्त होता और (शृतासः) जिन्होंने तप से अपने को तप्त कर लिया है, जो मन से शुद्ध हैं, वह (इत् वहन्तः) तप का आचरण करते हुए (तत् सम् आशत) उसको प्राप्त होते हैं।

न सत् था और न असत् था, सृष्टि के पूर्व में तमस् था।

(४६) नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्। किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गंभीरम्॥ १॥

अ० ७ व० १७।१ अ० ११ सू० १२९ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृष्ठ ५३१

भा०—(तदानीम्) इस जगत के उत्पन्न होने के पूर्व (न असत् आसीत्) न असत् था (नो सत् आसीत्) और न सत् था। (न रजः

आसीत्) उस समय रजस् अर्थात् नाना लोक भी न थे। (नो व्योम) न यहाँ परम आकाश था। (यत् परः) जो उससे भी परे है, वह भी न था। उस समय (किम् आ अवरीवः) क्या पदार्थ सबको चारों ओर से घेर सकता था? कुछ नहीं। (कुह) यह सब फिर कहाँ था और (कस्य शर्मन्) किसके आश्रय में था। तो फिर (किम्) क्या (गहनं गंभीरम् अम्भः आसीत्) गहन, अर्थात् जिसमें किसी पदार्थ का प्रवेश न हो सके, ऐसा गम्भीर जिसके वार-पार का पता न लगे, ऐसा 'अम्भस्' (अप्-भस्) कोई व्यापक भासमान 'आपः' तत्त्व विद्यमान था।

(४७) तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् । तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्म-हिनाजायतैकम् ॥२॥

अ० ७ व०१७। ३ अ० ११ सू०१२९ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृष्ठ ५३२

भा०— (अग्रे) सृष्टि होने के पूर्व, (तमः आसीत्) 'तमस्' था। वह सब (तमसा गूढम्) तमस् से व्याप्त था। वह (अप्रकेतम्) ऐसा था कि उसका कुछ भी विशेष ज्ञान योग्य न था। वह (सलिलम्) सलिल एक व्यापक गतिमत् तत्त्व था, जो (सर्वम् इदम् आ) इस समस्त को व्यापे था। उस समय (यत्) जो था भी वह (तुच्छ्येन) तुच्छ सूक्ष्म रूप से (आभूअपिहितम्) चारों ओर का सब विद्यमान पदार्थ ढका था। (तत्) वह (तपसः महिना)

तपस् के महान सामर्थ्य से (एकम्) एक (अजायत) प्रकट हुआ।

-:: सृष्टि से पूर्व की बातें ::-

(४८) कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥४॥

अ० ७ व०१७।४ अ०११ सू०१२९ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृष्ठ ५३२

भा०—(अग्रे) सृष्टि के पूर्व में (तत्) वह (मनसःअधि) मन से उत्पन्न होनेवाली (कामः) इच्छा के समान एक कामना ही, (सम् अवर्तत) सर्वत्र विद्यमान थी, (यत् प्रथमम् रेतः आसीत्) जो सबसे प्रथम इस जगत का प्रारंभिक बीजवत् था।(कवयः) क्रान्तदर्शी तत्त्वज्ञानी पुरुष (हृदि प्रति इष्य) हृदय में पुनः पुनः विचार कर (असति) अप्रकट तत्त्व में ही (सतः बन्धुम्) सत् रूप प्रकट तत्त्व को बाँधनेवाला बल (निर् अविन्दन्) प्राप्त करते हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं जानता है।

(४९) तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्। रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्॥५॥

अ० ७ व०१७।५ अ०११ सू०१२९ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृष्ठ ५३३

भा०—(एषाम्) इन पूर्वोक्त असत्, अम्भस, सलिल अर्थात् तपस् और काम, रेतस् अर्थात् रजस् और सत्; इन तीनों का (रश्मि) सूर्य रश्मि के समान रश्मि (तिरः चित् विततः) बहुत दूर-दूर तक व्याप्त हुआ, (अधः स्वित् आसीत्) नीचे भी रहा और (उपरिस्वित् आसीत्) ऊपर भी था। (रेतः धाः आसन्) उक्त 'रेतस्' को धारण करनेवाले तत्त्व भी थे। (महिमानः आसन्) वे महान सामर्थ्यवाले थे। (अवस्तात् स्वधा) नीचे 'स्वधा' और (परस्तात् प्रयतिः) उससे परे वह उत्कृष्ट यत्न आश्रय रूप था।

(५०) को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः। अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥

अ० ७ व० १७। ६अ० ११ सू०१२९ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृष्ठ ५३३

भा०—(अद्धा कः वेद) सत्य-सत्य, ठीक-ठीक कौन जान सकता है ? (इह कः प्रवोचत्) यहाँ या इस विषय में कौन उत्तम रीति से प्रवचन या उपदेश कर सकता है ? (कुतः आ जाता) यहाँ सृष्टि कहाँ से प्रकट हुई ? (इयं विसृष्टिः) यह विविध प्रकार का सर्ग (कुतः) किस मूल कारण से और क्यों हुआ ? (देवः) यह तेज से चलनेवाले सूर्य, चन्द्र आदि लोक भी (अस्य विसर्जनेन) इस जगत को विविध प्रकार से रचनेवाले मूल कारण से (अर्वाक्) पश्चात् ही हैं। (अथ कः वेद) तो फिर कौन उस तत्त्व को जानता है ? (यतः) जिससे यह जगत (आ बभूव) चारों ओर प्रकट हुआ।

(५१) इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
योअस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा
न वेद ॥ ७ ॥

अ० ७ व० १७। ७ अ०११ सू० १२९अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृष्ठ ५३४

भा०— (इयं विसृष्टिः) यह विविध प्रकार की सृष्टि (यतः आ बभूव) जिस मूल तत्त्व से प्रकट हुई है (यदि वा दधे) और जो वह इस जगत को धारण कर रहा है (यदि वा न) और जो नहीं धारण करता (यः अस्य अध्यक्षः) जो इसका अध्यक्ष वह प्रभु (परमे व्योमन्) परम पद में विद्यमान है । (सः अंग वेद) हे विद्वन्! वह सब तत्त्व जानता है (यदि वा न वेद) चाहे और कोई भले ही न जाने।

टिप्पणी — इन उपर्युक्त मन्त्रों से विदित होता है कि आदि की बातें परमात्मा के अतिरिक्त कोई अच्छी तरह नहीं जानते हैं। वायु को प्राण नहीं कहा गया है। इन मन्त्रों की कतिपय बातें सन्त कबीर साहब के निम्नलिखित पद्य से मिलती-जुलती है।

यथा —

सखिया वा घर सबसे न्यारा, जहँ पूरन पुरुष हमारा ॥टेक॥
जहँ नहिं सुख दुख साँच झूठ नहिं, पाप न पुन्न पसारा ।
नहिं दिन रैन चन्द नहिं सूरज, बिना जोति उजियारा ॥१॥
नहिं तहँ ज्ञान ध्यान नहिं जप तप, बेद कितेब न बानी ।
करनी धरनी रहनी गहनी, ये सब जहाँ हिरानी ॥२॥
धर नहिं अधर न बाहर भीतर, पिंड ब्रह्मण्ड कछु नाहीं ।

पाँच तत्त्व गुन तीन नहीं तहँ, साखी शब्द न ताही ॥३॥
मूल न फूल बेलि नहिं बीजा, बिना वृक्ष फल सोहै ।
ओअं सोहं अर्ध उर्ध नहिं, स्वासा लेख न कोहै ॥४॥
नहिं निर्गुण नहिं सर्गुण भाई, नहीं सूक्ष्म स्थूलं ।
नहीं अच्छर नहिं अविगत भाई, ये सब जग के मूलं ॥५॥
जहाँ पुरुष तहवाँ कछु नाहीं, कहै कबीर हम जाना ।
हमरी सैन लखै जो कोई, पावै पद निरवाना ॥६॥

-:: त्रिकाल सन्ध्या ::-

(३३) श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि । श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥ ५॥

अ० ८ व० ९। ५ अ०११ सू०१५१ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृष्ठ ५९९

भा०— हम (प्रातः श्रद्धां) प्रातःकाल में उस सत्य से जगत को धारण करनेवाले प्रभु-शक्ति की (हवामहे) प्रार्थना करते हैं । (मध्यं दिनं परि श्रद्धां हवामहे) दिन के मध्य काल में उस सत्यधारक प्रभु को ध्यान करते हैं । (सूर्यस्य निम्रुचि) सूर्य के अस्तकाल में भी हम उसी श्रद्धामय प्रभु की उपासना करते हैं । हे (श्रद्धे) श्रद्धे सत्य धारणावति देवि! तू (नः इह श्रद्धापय) हमें इस जगत में सत्य ही को धारण करा ।

टिप्पणी— यह मन्त्र त्रिकाल सन्ध्योपासना की आज्ञा देता है ।

-:: आपस में सब मेल से रहो और ईश्वरोपासना करो ::-

(५३) सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २॥

अ० ८ व० ४९। २अ० १२ सू०१९१ अष्टक ८ मंडल १० खंड ७ पृष्ठ ६७२

भा०— हे मनुष्यो! आपलोग (सं गच्छध्वं) परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर रहो।(सं वदध्वम्) परस्पर मिलकर प्रेम से बातचीत करो, विरोध छोड़कर एक समान वचन कहो।(वः मनांसि) आपलोगों के सब चित्त (सं जानताम्) एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें।(यथा) जिस प्रकार (पूर्वे देवाः) पूर्व के विद्वान जन (भागं) सेवनीय और भजन करने योग्य प्रभु का (जानानाः ज्ञान सम्पादन करते हुए (सम् उपासते) अच्छी प्रकार उपासना करते रहें, उसी प्रकार आपलोग भी ज्ञान सम्पन्न होकर (भागं सम् उपासते) सेवनीय अन्न और उपास्य प्रभु का सेवन और उपासना करो।

॥ इति ऋग्वेदः ॥

❋ सामवेद संहिता ❋

-:: आग्नेय काण्डम् ::-

वेदवाणी के अतिरिक्त मनुष्य-वाणियों में ईश्वर की स्तुति

(७)

(१) एह् यू षु ब्रवाणि तेऽग्ने इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥ ७॥

ऋ० ६। १६।१६, प्र० १ (१) द० १ अ० १ खण्ड १। ७ पृष्ठ ३

भा०— हे अग्ने! हे प्रकाशस्वरूप! आ तेरे लिये इस प्रकार की वैदिक सत्य वाणियों और उनसे दूसरी लौकिक वा वेदवाणी से अतिरिक्त, मनुष्य-वाणियों को मैं तेरी स्तुति में कहूँ। इन परम ऐश्वर्यों से तू महिमा में बड़ा है। ईश्वर अपने सामर्थ्य, ज्ञान और गुणों द्वारा सबसे बड़ा है, वैदिक और लौकिक सब वाणियाँ उसकी ही स्तुति करती हैं।

टिप्पणी— इस मन्त्र में सब प्रकार की भाषाओं में परमात्मा की स्तुति करने की आज्ञा है।

-:: समस्त उत्पन्न पदार्थों में परमात्मा का निवास ::-

(४०)

(२) अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य । आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ ६॥

ऋ० १। ४४, १। १५८०; प्र० (१) द० ४ अ० १ खण्ड ४। ६ पृष्ठ १५

भा०— हे अग्ने! तू उषा का वास करने योग्य, विविध सुखों ऐश्वर्यों का साधक एवं स्वामी यज्ञादि परोपकार करनेवाले पुरुष को नाना प्रकार का ज्ञान प्राप्त करा। हे मरण-रहित नित्य! हे समस्त पदार्थों में निवास करनेवाले, सबको जाननेवाले वेदों के मूल कारण, तू आज सूर्योदय के साथ जागने एवं पापनाशक ज्ञानोदय से ज्ञानसम्पन्न एवं जागृत होनेवाले प्रकाशकिरणों के तुल्य इन्द्रियगण व विद्वानों को इस दाता मनुष्य के हितार्थ प्राप्त करा।

टिप्पणी— सब उत्पन्न पदार्थों में परमात्मा व्यापक है, इस मन्त्र में ऐसा कहा गया है। परमात्मा प्रकृति में भी व्यापक है। इसलिए प्रकृति भी उत्पन्न पदार्थों में ही है।

-:: प्राण-अपान रूप आहुति ::-

(८२)

(३) यदि वीरो अनुष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः। आजुह्वद्धव्य-मानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २॥ ऋग्वेदे नास्ति।

प्र० १ (२) द० ९ अ०१ खण्ड ९।२ पृष्ठ ३७

भा०— जब मरणधर्मा पुरुष ब्रह्मचर्य से वीर्यवान सामर्थ्यवान हो, तब वह अग्नि के तुल्य प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की उपासनार्थ यज्ञ में अग्नि को प्रदीप्त करे, उसे अपने अन्तरात्मा में भी जगावे और निरन्तर प्राण-अपान रूप आहुतियों को उसमें समर्पण करे।

देव परमेश्वर से प्राप्त होने योग्य सुख और शान्ति का सेवन करे।

टिप्पणी— प्राण-अपान रूप आहुतियों की अन्तरात्मा में आहुति देने की आज्ञा इस मन्त्र में है, यह सर्वोत्तम हवन है।

ऐन्द्रकाण्डम्

-:: परमात्मा अवाङ्मनसगोचर ::-

(१४२)

(४) क्व ३ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानत। ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ८ ॥

अ० ८।६४।७, प्र० २ (१) द० ५ अ० २ खंड ३।८ पृष्ठ ६१

भा०— इन्द्रिय-रूप गौओं में सर्वश्रेष्ठ, मेघ के समान सुखों का वर्षक, सदा अजर किसी के आगे न झुकनेवाला, अनेक गर्दनों वाला, सहस्त्र शिरोंवाला वह कहाँ है ? उसको कौन, ब्रह्म को जाननेवाला विद्वान पूजा करता है। हे ज्ञानी पुरुषो! तुम उस 'अप्रतर्क्य', अवाङ्मनसगोचर सहस्त्रशीर्षा पुरुष की विवेचना करो और उसके सच्चे उपासक ब्रह्मज्ञानी की पहचान करो। इन्द्र बहुग्रीव किस प्रकार है ?

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति इति मा वि०। तुवीतिः बहुपर्यायः।

(नि० ३।१।३)

अनेक वक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥
सहस्त्रशीर्षाः पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।

(यजु० ३।११)

-:: ध्यान लगाने का स्थान ::-

(१४३)

(५) उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥

ऋ० ८।६।२८, प्र० २ (१) द० ५।९ अ० २ खण्ड ४ पृष्ठ ६२

भा०— पर्वतों के गम्भीर प्रान्त में और नदियों के संगम स्थान पर, ज्ञान और कर्म के अभ्यास से मेधावी पुरुष तैयार हुआ करता है। आत्मा के पक्ष में — गिरि मेरुदण्ड के पोरुओं के समीप और इड़ा, पिंगला और सुषुम्ण; इन नाड़ियों के संगम स्थान त्रिकुटी में ध्यान लगाने से दिव्य ज्ञानवान पुरुष सिद्ध हो जाता है।

जल में जल की भाँति परमात्मा में जीवात्मा का मिलन।

(४०६)

(६) अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥८॥

ऋ० ८।९८।४; प्र० ५ (१) द० २ अ० ४ खण्ड ६८ पृष्ठ १६५

भा०— हे आत्मन्! प्रभो! हे वाणियों से प्राप्त होनेहारे ! जिस प्रकार जल अन्य जलों में मिल जाते हैं, उसी प्रकार हम अपनी कामनाओं द्वारा तेरे पास आते हैं और तेरे साथ मिल जाते हैं ।

टिप्पणी— '[१४२]' के मन्त्रार्थ में ब्रह्म को 'अप्रतर्क्य' 'अवाङ् मनसगोचर' कहा है, और कठोपनिषद् अ० १, वल्ली २ में है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥२३॥

भा०— यह आत्मा वेदाध्ययन-द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणा शक्ति अथवा अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है। यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है, उस (आत्मा) से ही यह प्राप्त किया जा सकता है, उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

इसलिए जिस वाणी से 'आत्मा! प्रभु!' प्राप्त होनेवाले हैं, वह अवश्य ही ध्वन्यात्मक अनाहत नाद होना चाहिये। और जिस तरह जल अन्य जल से मिल जाता है, उसी तरह जीव ब्रह्म में मिल जाता है। सन्तलोग भी ऐसा ही कहते हैं—

जौं जल में जल पैठ न निकसे, यों ढुरि मिला जुलाहा।
(कबीर साहब)

जल तरंग ज्यों जलहिं समाइआ त्यों जोती संगि जोति मिलाइआ।
(गुरु नानक)

-:: आत्मा की सत्यस्वरूप प्रियवाणी ::-

(४२१)

(७) महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती । यथा चिन् नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्व-सूनृते ॥ ३॥

ऋ० ५।७९।१; प्र०(१) द० ४ अ०४ खंड ८।३ पृष्ठ १७१

भा०— हे आत्मा की सत्यस्वरूप प्रियवाणि! हे उत्तम रूप से प्रकट होनेवाली! विस्तृत ज्ञान और प्रकाश से सम्पन्न, हे सब पापों के दहन करनेहारी। सत्य वेदज्ञान में जिस प्रकार हे ज्योतिःस्वरूपा! तू बड़े भारी दिव्य धन, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये आज हमें जगा, ज्ञानवान कर।

टिप्पणी— 'आत्मा की सत्यस्वरूप प्रियवाणी' को ही सन्तगण, सत्यनाम, सत्यशब्द, सारशब्द आदि कहते हैं। यह ध्वन्यात्मक अनाहत नाद है। इस मन्त्र में इस सत्यवाणी सत्यशब्द की स्तुति है। ऐसे ही श्रीशंकराचार्यजी महाराज ने भी इस वाणी की स्तुति की है—

नादानुसन्धान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महे तत्त्वपदं लयानाम्।
भवत्प्रसादात् पवनेन साकं विलीयते विष्णुपदे मनो मे ॥

(योगतारावली)

अर्थ —हे नादानुसन्धान! आपको नमस्कार है, आप परमपद में स्थित कराते हैं, आपके ही प्रसाद से मेरा प्राणवायु और मन—ये दोनों विष्णु के परमपद में लीन हो जायेंगे।

सत्यस्वरूप आत्मा की प्रियवाणी, उत्तम रूप से प्रकट होने वाली, विस्तृत ज्ञान और प्रकाश से सम्पन्न, सब पापों के दहन करनेहारी, ज्योति:स्वरूपा और ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये जगानेवाली कहकर आत्मा की प्रियवाणी का गुणानुवाद किया गया है।

(तिस्रो वाच) तीन वेद

अथ पवमान-काण्डम्

(४७१)

(८) तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत् ॥५॥

ऋ० ९।३३। ४ प्र० ५ (२) द० ९।५ अ० ५ खंड १ पृष्ठ १९०

भा०— दुधार गौएँ अपना दूध देने के लिये हंभारती हैं, उसी प्रकार तीनों वेद संहिताएँ ज्ञान और कर्म का रसपान कराने के लिए अभिप्राय प्रकट करती हैं। सर्वव्यापक जगदीश्वर एवं विद्वान उपदेश करता हुआ, ज्ञानवर्षक रूप से हमें प्राप्त होता है।

टिप्पणी— इसमें केवल तीन ही वेदों का वर्णन है।

-:: ज्योति का साक्षात्कार ::-

(४८४)

(८) पवमानो अजीजनत् दिवश्चित्रं न तन्यतुम्। ज्योति-
वैंश्वानरं बृहत्।

ऋ० ९।६१।१६; प्र० ५ (२) द० १०। ८ अ० ५ खण्ड ३ पृष्ठ १९४

भा०— जिस प्रकार बहता वायु आकाश में व्यापक, संचित होने योग्य, विशाल ज्योतिर्मय विद्युत् अग्नि को संघर्ष द्वारा प्रकट करता है, उसी प्रकार अन्तःकरण और बुद्धितत्त्व को विमल करने वाला साधक, योगी सूर्य के समान द्युलोंक, मूर्धा के विचित्र, आदर योग्य सब नरों में व्यापक, विशाल आत्मरूप प्रकाश को प्रकट करता है, उसे साक्षात् करता है।

टिप्पणी— इस मन्त्र में ज्योति के साक्षात् करने का आदेश है।

-:: अनाहत नाद को कौन नहीं प्राप्त कर सकता ::-

(५५३)

(१०) प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ९ ॥

ऋ० ९।१०१।१३, प्र० ६ (२) द० ६ अ०५ खंड ८।९ पृष्ठ २२३

भा०— अज्ञान अन्धकार के नाश करनेवाले परमानन्द स्वरूप सोम को उत्पन्न करनेहारे साधक के लिये प्रकट हुई सोम की अनाहत वाणी को साधारण मरणधर्मा पुरुष जिसको अमृत, सोमरस प्राप्त नहीं हुआ, वह नहीं प्राप्त कर सकता। भृगु अर्थात् ज्ञानाग्नि से अज्ञान और पाप को भून डालनेवाले ज्ञानी लोग जिस प्रकार कर्मकाण्ड को दूर कर देते हैं, उसी प्रकार साधना न करनेहारे, कर्मफल के लोभी, कुक्कुर के समान, भोगों को पुनः चाहनेवाले, वान्ताशी चित्त को भी मार भगाओ।

टिप्पणी— जिसको अमृत सोमरस प्राप्त नहीं हुआ, वह सोम की अनाहत वाणी को नहीं प्राप्त कर सकता।

सोम = चन्द्र = प्रकाश = प्रकाशरूप चेतनधार। सोम की अनाहत वाणी=चेतनधार स्वरूप। अनाहत वाणी=सत्यशब्द। अमृत = चेतन, चेतन मरण-धर्मा नहीं है। अमृत सोमरस = चेतन-प्रकाश का स्वाद।

श्रीजावालदर्शनोपनिषद् में लिखा है —

नासाग्रे शशभृद्बिम्बे विन्दुमध्ये तुरीयकम्।
स्त्रवन्तममृतं पश्येन्नेत्राभ्यां सुसमाहितः॥

अर्थ— नाक के आगे चन्द्रबिम्ब विन्दु के मध्य में उस तुरीय और चूते हुए अमृत को अच्छी तरह समाधिस्थ होकर आँखों से देखे।

-:: ब्रह्मानन्द के मधुर रस से पूर्ण अनाहत नाद ::-

(५५६)

(११) एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्यवज्रो वपुषो वपुष्टमः । अभ्यृ॒ तस्य सुदुधा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥

ऋ० ९।७७।१, प्र० ६ (२) द० ७ अ०५ खंड ९। ३ पृष्ठ २२५

भा०— यह सोम आत्मा के वज्र के समान सब विघ्नों और पापों का नाशक, बीजों को वपन करनेहारे से भी अधिक श्रेष्ठ बीज वपन करनेवाला, वीर्यवान हृदय-कोश, आभ्यन्तर मनोमय कोश के बीच में ब्रह्मानन्द के मधुर रस से पूर्ण उत्कृष्ट रूप से अनाहत नाद उत्पन्न करता है ।

जिस प्रकार हम्भारव करती हुई उत्तम दूध देनेहारी, दूध पिलानेवाली गौएँ दूध से धाराएँ बहाती हैं, उसी प्रकार ये कान्ति की धाराएँ बहानेवाले, ज्ञान के दोहनेवाले परमानन्द रस की धाराएँ हृदय में वाणी रूप से क्षरित होती हैं, प्रकट होती हैं ।

-:: अनाहत नाद करनेवाली धाराएँ ::-

(५५८)

(१२) धर्त्ता दिवः पवते कृतव्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो

नृभिः । हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥ ५॥

ऋ० ९।७६।१; प्र० ६ (२) द० ७। ५अ० ५ खण्ड ९ पृष्ठ २२६

भा०— द्यौलोक के समान देह में मूर्धाभाग या प्रकाश रूप सूर्य या ज्ञान का धारण करनेवाला योग साधनों द्वारा उत्तम रूप से ज्ञान करने योग्य, आनन्द रस देवों, इन्द्रियों और विद्वानों का बलदाता, मनुष्यों द्वारा हर्ष प्राप्त करने योग्य, अश्व या आत्मा के समान सात्त्विक विभूतियों द्वारा अपनी अनाहत नाद करनेवाली धाराओं में, नदियों में जल के समान बिना प्रयत्न के स्वभावतः नाना प्रकार के बल प्रकट करता है ।

उत्तरार्चिकः

-:: 'सोऽहं' या 'ओं' अन्त नाद ::-

(७६०)

(१३) दुहानः प्रत्नमित् षयः पवित्रे परि षिच्यसे ।
क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥ ३ ॥

ऋ० ९।४२।२, प्र० १ (२) अ० २ खंड ५ सू० १७। ३ पृष्ठ २९५

भा०— हे सोम! पुराने, अनादि काल से चले आये प्राण, जीवन को ही रस या जीवन रूप में प्राप्त करता हुआ तू पवित्र करनेहारे

प्राण और अपान युक्त देह में या परम पावन ज्ञान के द्वारा ही पवित्र किया जाता है, वृद्धि को प्राप्त होता है। शब्द करता हुआ अर्थात् 'सोऽहं' अन्त या 'ओं' का अन्त नाद करता हुआ, प्राण बल से तू इन्द्रियगण को प्रकट करता है।

-:: ब्रह्म का घोष मेघगर्जन के तुल्य ::-

(८६४)

(१४) श्रृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः।
चरन्ति विद्युतो दिवि॥ ३॥

प्र० ३ (१) सू० ३ अ० ५ खंड १। ३ पृष्ठ ३३६

भा० — जैसे आकाश में बिजलियाँ चलती हैं, उसी प्रकार जब आत्मा या ब्रह्मानन्द-रस की विशेष कान्तियाँ, दीप्तियाँ, समस्त संसार में या मूर्धा रूप ब्रह्माण्ड में वेग से गति करती हैं, तब अति बलवान अन्तःकरण को पवित्र करनेहारे और आनन्द का वर्षण करनेहारे व्यापक ब्रह्म का घोष मेघ के गर्जन के समान सुनता हूँ। धर्म मेघ समाधि के अवसर में अनाहत आत्मरूप पर्जन्य ध्वनि का यह वर्णन है।

अनाहत नाद के अभ्यास से प्राणवायु को वश करना।
(९२१)

(१५) पवमान धिया हितोऽभियोर्नि कनिक्रदत्। धर्मणा वायुमारुहः ॥३॥

ऋ० ९।२५।१,३,२; प्र० ३ (१) सू १० अ० ५ खण्ड ४३ पृष्ठ ३४५

भा०— हे आत्मन्! ध्यान के बल से अपने मूलस्थान, आश्रय, हृदयदेश में स्थिर होकर मेघवत् अनाहत नाद या ईश्वर की स्तुति करता हुआ अपने धारक प्रयत्न द्वारा प्राणवायु पर वश कर ।

टिप्पणी— अनाहत नाद के ध्यानाभ्यास-द्वारा प्राणवायु पर वश्यता होती है।

सर्वदर्शी परमात्मा नाद करता हुआ देह में व्याप्त है
(१०३२)

(१६) अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः। हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानो ऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥

प्र० ४ (१) सू० १ अ० ७ खण्ड १।२ पृ० ३८२

भा०— सर्वशक्तिमान, ऐश्वर्यवान, द्यौलोक का या सूर्यादि व प्राण-इन्द्रिय आदि दिव्य पदार्थों का भी परिपालक, उनको नाश

होने से बचानेवाला स्वामी, सैकड़ों धारण-शक्तियों और वाणियों से युक्त, समस्त संसार को देखनेवाला नाद करता हुआ, गर्जता हुआ कलश जीवधारियों के देह में आत्मा के समान व्याप्त रहता है। और वही सबके कष्टों और तापों को हरनेवाला सबको गति देनेहारा अपने स्नेह पात्र आत्मा के निवास-गृह, देहों में भी व्यापक हो विराजता है। वही सब सुखों का वर्षक विषयों के प्रति द्रुतगति से जानेवाली तन्मात्राओं या इन्द्रियों या प्राण शक्तियों द्वारा, बार-बार शोधा, साक्षात् परिष्कृत किया जाता है।

टिप्पणी— परमात्मा नाद करता हुआ, गर्जता हुआ जीवधारियों के शरीर में व्याप्त रहता है, से विदित होता है कि परमात्मा के समान उसका गर्जन या नाद भी सबमें व्यापक है। जो कोई इस नाद को अपने अन्दर में पकड़ेगा, वह परमात्मा के स्वरूप तक पहुँचेगा; क्योंकि नाद वा शब्द अपने उद्गम स्थान पर खींचकर पहुँचा देता है।

साहब कबीर सदा के संगी शब्द महल ले आवै ॥

-:: व्यापक आत्मा अनाहत रूप से नाद करता है ::-

(१०८०)

(१७) पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रददवने।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरंजानो अर्षसि ॥ २॥

ऋ ०९।१०७।२१, २२ प्र० ४ (१) अ० ७ खंड ४ सू० १२।२ पृष्ठ ३९५

भा०— प्राणमय या कर्ममय आवरण में से पवित्र होता हुआ, व्यापक आत्मा सुखों का वर्षक होकर इस ब्रह्माण्ड या अन्तरिक्ष में मेघ के समान अनाहत रूप से नाद करता और सुखों की वर्षा करता है।

हे प्रेरक! हे व्यापक! आप रश्मियों से अभिव्यक्त होते हुए समस्त प्रकाशमान पदार्थों के स्थान या मूल कारण को प्राप्त हों।

-:: रमणीय अनाहत नाद ::-

(१११७)

(१८) प्र हंसास्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः।
अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति
साकम् ॥२॥

प्र० ४ (२) अ० ८ खंड १ सू० १ पृष्ठ ४०५

भा०— हंसों के समान नीरक्षीरवत् सत्यासत्य का विवेक करनेहारे, परमहंस योगी लोग सत्त्व, रजस् और तमस् — तीनों को पार करके जाने-हारे या काम-क्रोधादि को प्रहार कर उन पर वशी, रमणीय अनाहत नाद को लक्ष्य करके उत्तम, धर्म मेघ समाधि के साधक योगीजन अव्यक्त बल या ज्ञान से शरण-योग्य आत्मा को प्राप्त होते

हैं। वे समान 'आत्मा' नामवाले या परम प्रभु के प्यारे एक साथ व्यापक, न सहन करने योग्य, असह्य तेज से युक्त, इस देह में बसनेहारे, कान्तिस्वरूप या स्तुति करने योग्य भोक्ता, आत्मा को बतलाते हैं, उसका उपदेश करते हैं।

-: अनाहत नाद या परमेश्वर की स्तुति से मोक्ष :-
(१२६२)

(१९) एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया।
पवमानः कनिक्रदत्॥ ७॥

प्र० ५ (२) अ० १० खंड १ सू० २।७ पृष्ठ ४५१

भा०— वह शुद्ध, पवित्र होकर समस्त रजोगुण के कर्मों और लोकों को अपनी धारण शक्ति द्वारा अतिक्रमण करके अनाहतनाद या परमेश्वर की स्तुति करता हुआ ज्ञानमय, मोक्ष को प्राप्त करता है।

-:: अध्यात्म-यज्ञ के समक्ष द्रव्ययज्ञ व्यर्थ ::-
(१३०८)

(२०) कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधा॥ २॥

प्र० ५ (२) अ० १०।२ खंड ९ सू० १० पृष्ठ ४६६

भा०— ज्ञानीगण अपने स्तोत्रों द्वारा जब इन्द्र अर्थात् आत्मा ही को जीवन-रूप यज्ञ का साधन बना लेते हैं, तब विद्वान लोग अन्य प्राण आदि इन्द्रिय-साधनों या यज्ञ के पात्रादि को प्रयोजन-रहित ही सहयोगी मात्र कहते हैं। साधक लोग जब अध्यात्म-यज्ञ करते हैं, तब द्रव्ययज्ञ व्यर्थ जान पड़ता है।

-: आत्मा से ही आत्मज्ञान और मोक्ष :-

(१५५७)

(२१) अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वां अश्नोति मर्त्यः।
क्षयं पावकशोचिषः॥ २॥

प्र० ७ (२) अ० १५ खंड ३ सू० ९। २ पृष्ठ ५५१

भा०— दानशील अपने को उस आत्मा के प्रति समर्पित करनेहारा साधक मरणधर्मा पुरुष शरीर को रथ के समान धारण करनेहारे उस आत्मरूप अग्नि से ही अन्न तुल्य समस्त सुख और भोग्य पदार्थ का भोग करता है और अपने आपको पावन करनेहारे तेज के निवास स्थान परमेश्वर को भी प्राप्त करता है। अर्थात् आत्मा से ही आत्मज्ञान और मोक्ष का भी लाभ करता है।

॥ इति सामवेदः ॥

❋ यजुर्वेद संहिता ❋

-:: जीवन्मुक्त तथा अमर अविनाशी मोक्ष ::-

(१) त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥६०॥

यजुर्वेद अध्याय ३ मन्त्र ६० खण्ड १ पृष्ठ १०१

भा०—(त्रि-अम्बकम्) तीन शक्तियों से सम्पन्न (सुगन्धिम्) उत्तम मार्ग में प्रेरणा करनेवाले (पुष्टिवर्धनम्) प्रजा के पोषण कार्य को बढ़ानेवाले राजा का हम (यजामहे) सत्संग करें, साथ दें, उसका आदर करें। जिससे मैं प्रजाजन (मृत्योःबन्धनात्) मृत्यु के बन्धन से (उर्वारुकम् इव) लता के बन्धन से पके खरबूजे के समान (मुक्षीय) स्वयं मुक्त रहूँ, (अमृतात् मा) और अमृत अर्थात् जीवन वा मोक्ष से मुक्त न होऊँ। इसी प्रकार (सुगन्धिम्) उत्तम मार्ग में प्रेरण करनेवाले (पति वेदनम्) पालक पति को प्राप्त करानेवाले (त्र्यम्बकम्) वेदत्रयी रूप ज्ञान से युक्त राजा का (यजामहे) हम आदर करते हैं। जिससे मैं (उर्वारुकम् इव) लताबन्धन से खरबूजे के समान (इतः बन्धनात्) इस लोक के बन्धन से (मुक्षीय) मुक्त हो जाऊँ। (मा अमुतः) उस पारमार्थिक सम्बन्ध से न छूटूँ।

ईश्वर पक्ष में — शक्तित्रय से युक्त परमेश्वर की हम उपासना करें, जिससे मैं मृत्यु के बन्धन से मुक्त होऊँ और अमृत अर्थात् मोक्ष

से दूर न होऊँ। परम पालक को प्राप्त करानेवाले इस ईश्वर की पूजा करें, जिससे हम इस देह-बन्धन से छूटें, उस परम मोक्ष से वंचित न रहें। स्त्रियाँ भी प्रार्थना करती हैं— उत्तम पति (पालक) प्राप्त करानेवाले परमेश्वर की हम उपासना करते हैं कि इस पितृ-बन्धन से छूटें और उस पति-बन्धन से वियुक्त न हों। शत० २।६।२।१२।१४॥

टिप्पणी—इस मन्त्र में जीवन्मुक्त होने का उपदेश है।

(२) सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयँ् सह। विना-
शेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११॥

अ० ४० मन्त्र ११ खण्ड २ पृष्ठ ७३२

भा०— (संभूतिम्) जिसमें नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं, इस कार्य सृष्टि और (विनाशं च) जिसमें विनाश अर्थात् कारण में लीन होते हैं (उभयम्) दोनों को (यः) जो (सह) एक साथ (वेद) जान लेता है। वह (विनाशेन) सबके अदृश्य होने के परम कारण को जानकर (मृत्युम्) देह को छोड़ने के धर्म के भय को (तीर्त्वा) पार करके, उसको सर्वथा त्यागकर (संभूत्या) कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्त्व को जानकर (अमृतम्) उस अमर अविनाशी मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त करता है।

संभूतिः = सम्भवैकहेतुः परं ब्रह्म। विनाशः = विनाशधर्मकं शरीरमिति उवटः।

टिप्पणी— 'अमर अविनाशी मोक्ष' को पाकर भी फिर वह मोक्ष दशा छूट जाय और पुनः जन्म-मरण में आना पड़े तो अमर

अविनाशी 'मोक्ष' नहीं हुआ। इस वेद मन्त्रार्थ से मोक्ष में किसी बड़ी अवधि तक रहकर पुनः वह छूटे और संसार-चक्र में आना पड़े, ऐसा विचार नहीं प्रकट होता है।

प्राणायाम, ज्ञान और ध्यान से परमेश्वर प्रकट होता है।

(३) त्वामग्नेऽअङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दंछिश्रियाणं वनेवने। स जायसे मथ्यमानः सहो महत त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २८॥

ऋ० ५।११।६; अ० १५ मन्त्र २८ खण्ड १ पृष्ठ ६३४

भा०— हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान तेजस्विन्! (गुहाहितम्) अपने हृदय के गुह्य स्थान में स्थित और (वनेवने शिश्रियाणम्) वन-वन, प्रत्येक आत्मा-आत्मा में विद्यमान (त्वाम्) तुझ परमेश्वर का (अंगिरसः) ज्ञानी योगाभ्यासी पुरुष जिस प्रकार (अनु अविन्दन्) साक्षात् दर्शन करते हैं या प्रथम अपने आत्मा का और फिर उसमें भी व्यापक तेरा साक्षात् करते हैं और जिस प्रकार (वने-वने शिश्रियाणम्) प्रति पदार्थ या प्रत्येक काष्ठ में या प्रत्येक जल के परमाणुओं में विद्यमान (गुहा हितम्) गुप्त रूप से स्थित अग्नि तत्त्व को (अंगिरसः) विज्ञानवेत्ता (अनु अविन्दन्) प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार (स) वह तू (मथ्यमानः) प्राणायाम, ज्ञान, ध्यानाभ्यास से मथित होकर परमेश्वर प्रकट होता है और जिस प्रकार अरणियों से मथा जाकर अग्नि प्रकट होती है, उसी

प्रकार (मथ्यमानः) अपनी और शत्रु सेना के बीच में युद्धादि द्वारा मथा जाकर (महत् सहः) बड़े भारी बल रूप में (जायसे) प्रकट होता है। हे (अंगिरः) सूर्य के समान या अङ्गारों के समान तेजस्विन्! या शरीर में प्राण के समान राष्ट्र के प्राण-रूप! (त्वाम्) तुझको (सहसः पुत्रम्) बल का पुंज, शक्ति का पुतला शक्ति से उत्पन्न हुआ (आहुः) कहते हैं।

(४) असौ यस्ताम्रोऽअरुणऽउत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनँ्रुद्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्त्रशोऽ वैषाँ् हेडऽईमहे ॥६॥

अ० १६ मंत्र ६ खंड १ पृष्ठ ६५६

भा०— (असौ यः) यह जो (ताम्रः) ताम्बे के समान रक्त, कठिन, शरीर एवं तेजस्वी (अरुणः) अग्नि के समान तेजस्वी, (बभ्रुः) सूर्य के समान पीले-लाल रंग का (सु-मंगलः) शुभ मंगल चिह्नों से अलंकृत है अथवा यह जो (ताम्रः) सूर्य के समान लाल सुर्ख, तेजस्वी और शत्रुओं को क्लेशित कर देने में समर्थ और (अरुण) सूर्योदय के समय के सूर्य के समान गुलाबी प्रभावाला, अथवा शत्रु से कभी न रोके जानेवाला, अथवा सबका शरण्य (उत बभ्रुः) पीले, धूम्रवर्ण का, कपिल, पाटल रंग का अथवा अन्न के समान सब प्रजा और भृत्य वर्गों का भरण, पोषण, पालन करने में समर्थ (सु-मंगलः) सुखपूर्वक सर्वत्र विचरने में समर्थ है। और (ये च) जो भी (रुद्राः) शत्रु को रुलाने, रोकनेवाले या गम्भीर गर्जना करनेवाले वीरगण (एनम् अभितः) इसके इर्द-गिर्द (दिक्षु) समस्त

दिशाओं में (सहस्त्रशः श्रिता) हजारों की संख्या में विराजमान हैं (एषाम्) इनके (हेडः) रोष, क्रोध या अनादरभाव को हम (अव ईमहे) दूर करें, शमन करें ।

-: चेतनांश :-

(५) असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपाऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः दृष्टो स मृडयाति नः॥ ७॥

अ० १६ मन्त्र ७ खं० १ पृष्ठ ६५७

भा०— (यः) जो (असौ) वह (नीलग्रीवः) गले में नीलमणि बाँधे और (विलोहितः) विशेष रूप से लाल पोशाक पहने अथवा विविध गुणों और अधिकारों से उच्च पद को प्राप्त कर (अवसर्पति) निरन्तर आगे बढ़ा चला जाता है (एम्) उसको तो (गोपाः) गौओं के पालक गोपाल और (उदहार्यः) जल लानेवाली कहारियों तक भी (अदृश्रन्) देख लेती हैं और पहचानती हैं । (स) वह (दृष्टः) आँखों से देखा जाकर (नः मृडयाति) हम प्रजाजनों को सुखी करे ।

(६-७, -ब्रह्मध्यान में समाधि के अवसर के पूर्व ताम्र, अरुण, बभ्रु, नील व रक्त आदि वर्णों का साक्षात् होता है । उस आत्मा के ही आधार पर (रुद्रः) रोदनशील सहस्त्रों प्राणी आश्रित हैं । हम उनका अनादर न करें । क्योंकि उनमें वही चेतनांश हैं, जो हम में

हैं। उसी आत्मा को नीलमणि के समान स्वच्छ, कान्तिमान अथवा लालमणि के समान विशुद्ध लोहित रूप से (गोपाः) इन्द्रिय-विजयी अभ्यासी जन और (उदहार्यः) ब्रह्मामृत रस का आस्वादन करने वाली चित्त भूमियें साक्षात् करती हैं, वह हमें सुखी करें। ईश्वर-पक्ष में—वह पापियों को पीड़ित करने से 'ताम्र', शरण देने से 'अरुण', पालन-पोषण करने से 'बभ्रु', सुखमय रूप से व्यापक होने से 'सुमंगल' है। समस्त (रुद्राः) बड़ी शक्तियाँ उसी पर आश्रित हैं। हम उनका अनादर न करें। वह प्रलयकाल में या भूतकाल में जगत को लीन करनेवाला होने से 'नीलग्रीव' है, भविष्य में विविध पदार्थों का निरन्तर उत्पादक होने से 'विलोहित' है। उसको संयमीजन और ब्रह्मरस-पायिनी 'ऋतंभरा' आदि चित्तवृत्तियाँ साक्षात् करती हैं। वह ईश्वर हमें सुखी करें।

नीलग्रीवाः=नीलास्यः—यथा चूलिकोपनिषदि नीलास्यः ब्रह्मशायिने। अत्र दीपिका—लीनमास्यम् मुखं प्रवृत्तिद्वारं रागादि येषां तथोक्तः। तत्र नलयोर्वर्णविपर्ययश्छान्दसः—

यस्मिन् सर्वमिदं प्रोतं ब्रह्म स्थावर-जंगमम्।
तस्मिन्नेव लयं यान्ति बुदबुदाः सागरे यथा ॥१७॥ चू० आ०॥

टिप्पणी— व्यापक चेतनांश सबमें एक ही है।

'ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥'

-: ब्रह्मपद को प्राप्त करना :-

(६) पृथिव्याऽअहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥६७॥

अथ ०४।१४।३; अ० १७ मन्त्र ६७ खण्ड १ पृष्ठ ४७०

भा०— मैं अधिकार-प्राप्त राजा (पृथिव्याः) पृथिवी से अर्थात् पृथिवी निवासी प्रजागण से ऊपर (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष के समान सर्वाच्छादक, सब सुखों के वर्षकपद को वायु से समीप (आरुहम्) प्राप्त होऊँ और मैं (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष पद से (दिवम्) सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वप्रकाशक, सर्वद्रष्टा, तेजस्वी विराट्पद पर (आरुहम्) चढ़ूँ । (नाकस्य) सर्वसुखमय (दिवः) उस तेजोमय (पृष्ठात्) सर्वपालक, सर्वोपरि पद से भी ऊपर (स्व) सुखमय (ज्योतिः) परम प्रकाश, ज्ञानमय ब्रह्मपद को भी (अहम्) मैं (अगाम्) प्राप्त करूँ । शत० ९।२।३।२६॥

अध्यात्म में—योगी स्वयं मूलाधार से अन्तरिक्ष = नाभिदेश को और फिर शिरोदेश को जागृत कर वहाँ से सुख परमब्रह्म ज्योति को प्राप्त करता है ।

-: विश्व को उत्पन्न करनेवाली ईश्वर की वाणी :-

(७) ताँ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्व-
जन्याम् । यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाँ सहस्त्र-
धाराम्पयसा महीं गाम् ॥४७॥

अ० १७ मन्त्र ७४ खण्ड १ पृष्ठ ७४४

भा०— (अहम्) मैं (वरेण्यस्य) सर्वश्रेष्ठ, सबों द्वारा वरण करने योग्य, उत्तम वरण योग्य पद पर ले जानेहारे (सवितुः) सूर्य के समान सबके प्रेरक, ऐश्वर्यवान राजा के (ताम्) उस (चित्राम्) अद्भुत (सुमतिम्) शुभज्ञानवाली (विश्वजन्याम्) समस्त प्रजाजनों में से बनाई गई, उनके हितकारी सभापति को (वृणे) स्वीकार करता हूँ। (याम्) जिस (प्रपीनाम्) अतिपुष्ट (सहस्रधाराम्) सहस्रों ज्ञानवाणियों या नियमधाराओं से युक्त अथवा सहस्रों ज्ञानों को धारण करनेवाली (पयसा) दूध से जिस प्रकार गौ, और अन्न से जिस प्रकार पृथिवी आदर योग्य होती है, उसी प्रकार (पयसा) वृद्धिकारी राष्ट्र के पुष्टिजनक उपायों से (महीम् गाम्) बड़ी भारी ज्ञानमयी, (याम्) जिस विद्वत् सभा को (कण्वः) मेधावी जन (अदुहन्) दोहते हैं, उससे वाद-विवाद द्वारा सारतत्त्व को प्राप्त करते हैं। श० ९।२।३।३८॥

राजा रूप प्रजापति की यही अपनी 'दुहिता' गौ, राजसभा है, जिसे वह अपनी पत्नी के समान अपने आप उसका सभापति होकर उसको अपने अधीन रखता है। जिसके लिये ब्राह्मण ग्रन्थ में लिखा है-'प्रजापतिः स्वां दुहितरमभ्यधावत्।' इत्यादि उसी को 'दिव' या 'उषा' रूप से भी कहा है, वस्तुतः यह राजसभा है। परमेश्वर के पक्ष में— सबसे श्रेष्ठ सर्वोत्पादक परमेश्वर की अद्भुत (विश्वजन्या) विश्व को उत्पन्न करनेवाली (सुमतिं) उत्तम ज्ञानवती (गाम्) वाणी को मैं (वृणे) सेवन करूँ। (याम् महीम् गाम्) जिस पूजनीय वाणी

को सहस्त्रों धारवाली हृष्ट-पुष्ट गाय के समान (सहस्त्रों 'धारा', धारण सामर्थ्य या व्यवस्था-नियमोंवाली को (कण्वः अदुहत्) ज्ञानी पुरुष दोहन करता है; उससे ज्ञान प्राप्त करता है ।

परमेश्वर के पक्ष में टिप्पणी—'परमेश्वर की अद्भुत विश्व को उत्पन्न करनेवाली वाणी का मैं सेवन करूँ ।' इसी वाणी वा शब्द वा नाद को ध्यानाभ्यास द्वारा भजने वा ग्रहण करने का आदेश सन्तलोग करते हैं ।

साधो शब्द साधना कीजै ।
जेहि सब्द से प्रगट भये सब, सोई सब्द गहि लीजै ॥ टेक ॥
शब्दहि गुरू सब्द सुनि सिष भे, सब्द सो बिरला बूझै ।
सोइ सिष्य सोइ गुरू महातम, जेहि अन्तर गति सूझै ॥१॥
सब्दै बेद पुरान कहत है, सब्दै सब ठहरावै ।
सब्दै सुर मुनि सन्त कहत हैं, सब्द भेद नहिं पावै ॥२॥
सब्दै सुनि-सुनि भेष धरत है, सब्द कहै अनुरागी ।
षट दरसन सब सब्द कहत हैं, सब्द कहै वैरागी ॥३॥
सब्दै माया जग उतपानी, सब्दै केरि पसारा ।
कहै कबीर जहँ सब्द होत है, तवन भेद है न्यारा ॥४॥

(कबीर साहब)

शब्द तत्तु बीर्ज संसार । शब्दु निरालमु अपर अपार ॥
शब्द विचारि तरे बहु भेषा । नानक भेदु न शब्द अलेषा ॥
सारी स्रृष्टि शब्द कै पाछे । नानक शब्द घटै घटि आछे ॥

(गुरु नानक)

शब्दै बंध्या सब रहै, शब्दै सब ही जाइ ।
शब्दैं ही सब ऊपजै, शब्दैं सबै समाइ ॥
शब्दैं ही सूषिम भया, शब्दैं सहज समान ।
शब्दैं ही निर्गुण मिलै, शब्दैं निर्मल ज्ञान ॥
एक सबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोइ ।
आगैं पीछे तौ करै, जे बल हीणा होइ ॥

(दादू दयाल)

-: प्राणियों में ध्वनि की विद्यमानता :-

(७) चत्वारि शृंगा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्ता सोऽअस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२ ऽआविवेश ॥९१॥

अ० १७ मंत्र ९१ खण्ड १ पृष्ठ ७५५

भा०— शब्द के पक्ष में—४ सींग—नाम, आख्यात (क्रिया पद), उपसर्ग और निपात। तीन पद—भूत, भविष्यत् और वर्तमान। दो शिर—शब्द नित्य और अनित्य। सात हाथ—सात विभक्तियाँ। यह शब्द तीन स्थान पर बद्ध है—छाती में, कण्ठ में और शिर में। सुनने से सुख का वर्षण करता है। वह शब्द करता, उपदेश देता है और ध्वनि रूप होकर समस्त मरणधर्मा प्राणियों में विद्यमान है।

(पतंजलि मुनि। व्याकरण महाभाष्य आ० १)

-: गुरु, विद्वान और पूज्य पुरुषों से विनय :-

(८) पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः। पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा। पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ३७॥

अ० १९ मन्त्र ३७ खण्ड २ पृष्ठ ८२

भा०— (सोम्यासः) ऐश्वर्य, राज्यकार्य में स्थित सोम राजा के समान शान्त और तेजस्वी (पितरः) पालक गुरु, आचार्य, विद्वान ऋत्विग और आदि पूज्य पुरुष (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करें। निन्दा योग्य, असत् आचार से छुड़ाकर सदाचार, शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करावें।(पितामहाः मा पुनन्तु) पिता के पिता के समान पालकों के भी पालक, गुरुओं के गुरु, शासकों के भी शासक पुरुष मुझे पवित्र आचार व्यवहारवाला करें।(पितामहाः पुनन्तु) उनके पूज्य लोग भी मुझे पवित्र आचारवान बनावें। वे (पवित्रेण) पवित्र (शतायुषा) सौ वर्ष के पूर्ण दीर्घजीवनवाले आहार आदि से मुझे पवित्र करें। (पुनन्तु पिता०, पुनन्तु प्रपिता० पवित्रेण शतायुषा) पूर्ववत्। जिससे मैं (विश्वम्) समस्त, सम्पूर्ण (आयुः) जीवन का (व्यश्नवै) भोग करूँ।(३७-४५) शत० १२ ।८९।१८॥

टिप्पणी— यह मन्त्र बड़े-बूढ़ों का आदर-सत्कार करने, उनसे प्रार्थना करने तथा इन आचरणों के फल का ज्ञान देता है।

-: दृष्टि और शब्द-साधन :-

(९) प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥२३॥

अ० २२ मन्त्र २३ खण्ड २ पृष्ठ २४५

भा०— (प्राणाय) भीतर से बाहर आनेवाला निःश्वास 'प्राण' है और (अपानाय) बाहर से भीतर जानेवाला उच्छ्वास अपान है। अथवा इससे विपरीत समझें। अथवा नाभि तक संचरण करनेवाला श्वासोच्छ्वास 'प्राण' है। नाभि से गुदा तक व्याप्त एवं नीचे की तरफ के मलों को बाहर करनेवाला बल 'अपान' है। इन दोनों को (स्वाहा) योग क्रिया से वश करना चाहिये। (व्यानाय स्वाहा) इसी प्रकार शरीर के शिर, बाहु, जंघा आदि अन्य अंगों में विद्यमान प्राण ही 'व्यान' है। उसका भी उत्तम रीति से ज्ञान और अभ्यास करना चाहिये। (चक्षुषे स्वाहा, श्रोत्राय स्वाहा) चक्षु को उत्तम रीति से देखने के कार्य में लगाओ एवं दर्शन शक्ति को उत्तम रीति से प्राप्त करो। श्रोत्र को गुरु के उपदेश में लगाओ और श्रवण शक्ति की वृद्धि करो। (वाचे स्वाहा, मनसे स्वाहा) वाणी का उत्तम रीति से प्रयोग करो और मन को उत्तम रीति से एकाग्र करो। शरीर में प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, वाग् और मन को हृष्ट-पुष्ट करो। इसी प्रकार राष्ट्र शरीर के इन भागों को भी पुष्ट करो।

टिप्पणी— इस मन्त्र में दृष्टियोग और शब्दयोग; दोनों साधनों के करने का आदेश दिया गया है।

-: ज्योतिर्ध्यान का महत्त्व :-

(१०) तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२॥

अ० ३० मन्त्र २ खण्ड २ पृष्ठ ४८९

भा०— (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक और सबके प्रकाशक प्रभु, परमेश्वर के (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करने वाले एवं सबों से वरण करने योग्य, सर्वोत्तम (भर्गः) पापों के भून डालनेवाले तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं। (यः) जो (नः) हमारे (धियः) बुद्धियों, कर्मों और स्तुति-वाणियों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग से प्रेरित करे। शत० १३।६।२।९॥

टिप्पणी— इस मन्त्र में ज्योतिर्ध्यान का महत्त्व कहा गया है। सन्तलोग भी इस ध्यान का ऐसा ही महत्त्व वर्णन करते हैं।

'जोति लाय जगदीश जगाया बूझे बूझनहारा ।'
'कबीर कमल प्रकाशिया, ऊगा निर्मल सूर ।
रैन अँधेरी मिट गई, बाजै अनहद तूर ॥'

(कबीर साहब)

'अंतरि जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा[१]।'
'प्रगटी जोति जोति महि जाता[२] मनमुखि भरमि भुलाणी ॥'

(गुरु नानक)

'निरमल जोत जरत घट माँही। देखत दृष्टि दोष सभ छीजै ॥'

(तुलसी साहब)

'तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम्।'

(तेजोविन्दूपनिषद्)

अर्थ— हृदय स्थित विश्वात्म तेजस् स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है।

-: ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के परे :-

(११) ॥ओ३म्॥ सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

अ० ३१ मन्त्र १ खण्ड २ पृष्ठ ५२०

भा०— (सहस्त्रशीर्षाः) हजारों, असंख्य शिरोंवाला; (सहस्त्राक्षः) हजारों, अनन्त आँखोंवाला (सहस्त्रपात्) हजारों, अनन्त पैरोंवाला (पुरुषः) 'पुरुष' सर्वत्र पूर्ण जगदीश्वर है। वह (भूमिम्) सबको उत्पन्न करनेवाली भूमि के समान सर्वाश्रय प्रकृति को (सर्वतः) सब

[१]करंमा (फारसी) कररम = दयादान।
[२]जाता (पंजाबी) = जाना, ज्ञान प्राप्त किया।

प्रकार (स्पृत्वा) व्याप कर (दशांगुलम्) और भी दश अंगुल अर्थात् दश अंग विकार महत् आदि या पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूतों का (अतिष्ठत्) अतिक्रमण करके, उनमें भी व्याप्त होकर उनसे भी अधिक शक्तिमान अध्यक्ष होकर विराजता है।

(१२) पुरुषऽएवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

अ० ३१ मन्त्र २ खण्ड २ पृष्ठ ५२२

भा०— (पुरुषः एव) वह जगत में पूर्ण व्यापक परमेश्वर ही (यत् भूतम्) जो जगत उत्पन्न है (यत् च) और जो (भाव्यम्) भविष्य में उत्पन्न होगा और (यत्) जो (अन्नेन) भोग्य अन्न के समान भोग्य कर्मफल से स्वयं (अतिरोहति) शरीर, स्थावर-जंगम रूप पृथिव्यादि पर उत्पन्न होता (इदं सर्वम्) इस सबका (उत) और (अमृतत्वस्य) अमृतत्व, मोक्ष या सत्, अविनाशी स्वरूप का (ईशानः) स्वामी, परमेश्वर है। वही सब कुछ रचता है।

टिप्पणी— सब कुछ के अन्दर प्रकृति भी होनी चाहिए।

(१३) ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरुषः।
स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ ५॥

अ० ३१ मन्त्र ५ खण्ड २ पृष्ठ ५२५

भा०— (ततः) उस पूर्ण पुरुष परमेश्वर से (विराट् अजायत) विराट् अर्थात् विविध पदार्थों, नाना सूर्यादि लोकों से प्रकाशमान

ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ।(विराजः अधि) उस विराट् के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से (पूरुषः) पुर में बसनेवाले स्वामी के समान उस ब्रह्माण्ड को पूर्ण करनेहारा व्यापक परमेश्वर ही था।(सः) वह (पुरः) सबसे पूर्व विद्यमान रहकर (जातः) कार्य-जगत में शक्ति रूप से प्रकट होकर भी (अति अरिच्यत) उससे भी कहीं अधिक बड़ा है।(पश्चात्) पीछे से वह (भूमिम्) प्राणियों और वृक्षादि को उत्पन्न करनेवाली भूमि को उत्पन्न करता है।

अथवा— (स जातः अति अरिच्यत) वह प्रादुर्भूत होकर भी उस जगत से पृथक रहा और (सः पश्चाद्) वह पीछे (भूमिम् अथोपुरः) भूमि और जीवों के शरीरों को उत्पन्न करता है।

-: ईश्वर का ज्ञान और साक्षात्कार :-

(१४) वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥

अ० ३१ मन्त्र १८ खण्ड २ पृष्ठ ५३१

भा०— (अहम्) मैं (एतम्) उस (महान्तम्) बड़े भारी (पुरुषम्) ब्रह्माण्ड भर में व्यापक पूर्ण परमेश्वर को (आदित्यवर्णम्) सूर्य के समान तेजस्वी और (तमसः) अन्धकार के (परस्तात्) दूर विद्यमान (वेद) जानता और साक्षात् करता हूँ।(तम्) उसको ही (विदित्वा)

जानकर (मृत्युम् अति एति) मृत्यु को पार कर जाता है। (अन्यः) दूसरा कोई (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट मोक्ष स्थान को प्राप्त करने के लिये (न विद्यते) नहीं है।

(१५) प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥

अ० ३१ मन्त्र १९ खण्ड २ पृष्ठ ५३२

भा०— (प्रजापतिः) वह समस्त प्रजा का पालक (गर्भ अन्तः) गर्भ, गर्भस्थ जीवात्मा में भी अथवा — हिरण्यगर्भ के भीतर व्यापक होकर (चरति) विचरता है, विद्यमान है। वह (अजायमानः) स्वयं कभी उत्पन्न न होता हुआ भी (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विविध रूपों से प्रकट होता है। (तस्य, उसके (योनिम्) परम कारणस्वरूप को (धीराः) धीर, ध्याननिष्ठ योगिजन ही (परिपश्यन्ति) भली प्रकार देखते साक्षात् करते हैं। (तस्मिन् ह) उस सबके मूल कारण परमेश्वर में ही (विश्वाभुवनानि) समस्त भुवन, नाना ब्रह्माण्ड एवं सूर्यादि लोक (तस्थुः) स्थित हैं। वे सब उसी के आश्रय पर ठहरे हैं।

-: ब्राह्ममुहूर्त्त में ईश्वर और आचार्य की उपासना :-

(१६) प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रँ हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रँ हुवेम ॥३४॥

ऋ० ७।४१।१; अ० ३४ मन्त्र ३४ खण्ड २ पृष्ठ ६३९

भा०— (प्रातः) जब पाँच घड़ी रात्रि रहे तब प्रभात वेला में, प्रातःकाल, हमलोग (अग्नि हवामहे) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर का स्मरण करें। और ज्ञानवान आचार्य को नमस्कार करें। (प्रातः इन्द्रम्) प्रातःकाल में हम उस समस्त ऐश्वर्यों के दाता परमेश्वर का स्मरण करें और परम ऐश्वर्य को प्राप्त करें। अथवा आत्मा और ज्ञान के द्रष्टा आचार्य की उपासना करें। (प्रातः मित्रावरुणा हवामहे) प्रातःकाल के समय ही हमलोग मित्र अर्थात् प्राण के समान सबके स्नेहकारी, जीवनप्रद, प्रिय और वरुण अर्थात् अपान के समान सर्वमलनाशक और शक्तिमान परमेश्वर की उपासना करें। इसी प्रकार प्रातःकाल हमलोग प्राण और अपान की साधना प्राणायाम द्वारा करें। प्रातःकाल हमलोग मित्र स्नेही और श्रेष्ठ पुरुष को नमस्कार आदि सत्कार करें। (प्रातः अश्विना) माता-पिता को प्रातः नमस्कार करें। सूर्य, द्यौ और पृथ्वी, दिन और रात्रि के उत्पादक परमेश्वर की भी प्रातः उपासना करें। (भगम्) सबके सेवन करने योग्य, (पूषणम्) सबके, (ब्रह्मणस्पतिम्) वेद और ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर और ब्रह्म अन्न, बल, यश और ज्ञान के पालक विद्वान तेजस्वी पुरुष की

(प्रातः) प्रातःकाल दिन के पूर्व भाग में, सब कार्यों से प्रथम (सोमम्) सबके अन्तर्यामी, प्रेरक, (उत) और रुद्रम्) पापियों के रुलानेहारे एवं सर्वरोगनाशक, सर्वज्ञानोपदेशक परमेश्वर की हम प्रातःकाल उपासना करें और इसी प्रकार विद्वान रोगहारी वैद्य और ज्ञानी विद्वानों का संग भी प्रातःकाल सर्व कार्यों के प्रथम करें।

प्रातःकाल ही (सोम) सोम आदि औषधियों का सेवन और (रुद्र) जीव आत्मा का चिन्तन भी प्रातःकाल ही किया करें। (महर्षि दयानन्द)।

टिप्पणी—इस मन्त्र में प्रातःकाल संध्या करने की, गुरु की उपासना या ध्यान करने की तथा पूज्यजनों का आदर और उनको प्रणाम करने की आज्ञा दी गई है।

॥ इति यजुर्वेदः ॥

❋ अथर्ववेद संहिता ❋

-:: आहुति ::-

(१) यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥१॥

खण्ड १ काण्ड ५ सू० २६ मन्त्र १ पृष्ठ ६४१

भा०—(यज्ञे) यज्ञमय ब्रह्म में (यजूंषि) यजूष् रूप (समिधः) समिधों, प्राणों को ही (स्वाहा) उत्तम रूप से आहुति करें, (अग्निः) प्रकाश स्वरूप, ज्ञानी (प्रविद्वान्) उनको जाननेहारा (वः) हे प्राणो! तुमको (युनक्तु) यज्ञमय परम ब्रह्म में समाधि द्वारा लगावें। प्राण, मन, अन्न, श्रद्धा, मज्जा; ये सब पदार्थ यजु हैं, समित् प्राण है।

टिप्पणी—इस मन्त्र के द्वारा योगमय आध्यात्मिक होम या हवन करने का विचार दिया गया है।

(२) प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥४॥

खण्ड १ काण्ड ५ सू० २६ मन्त्र ४ पृष्ठ ६४२

भा०—(प्रैषाः) प्रेषाएँ ही (यज्ञे) यज्ञ में (निविदः) 'निवित्' हैं। हे पुरुषो! यही उत्तम आहुतियाँ हैं। आपलोग (शिष्टाः) अपने मन और इन्द्रियों को वशीभूत कर विद्वान होकर (युक्ताः) समाधि युक्त-चित्त होकर (पत्नीभिः) अपनी पत्नियों और पालकशक्तियों-

सहित (इह) इस ब्रह्मयज्ञ में (वहत) प्राप्त होओ । 'प्रैषाः' = प्रकृष्ट उत्तम मानस इच्छाएँ, प्रेरणाएँ ही (नि-विदः) सब प्रकार के उत्कृष्ट ज्ञान करनेवाली शक्तियाँ हैं । उनको (यज्ञे स्वाहा) यज्ञमय प्रभु में आहुति करो, उसी में लगा दो ।

टिप्पणी — उत्तम मानस इच्छाओं, प्रेरणाओं की यज्ञमय प्रभु में आहुति करो, यह उत्तमोत्तम हवन है ।

(३) छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृते ह युक्ताः ॥५॥

खण्ड १ काण्ड ५ सू० ६ मन्त्र ५ पृष्ठ ६४२

भा०— (माता पुत्रम् इव) जिस प्रकार माता अपने पुत्र का पालन-पोषण करती है, उस प्रकार आपलोग (युक्ताः) प्रेम से उस परमब्रह्म में समाधि-मग्न होकर (पिपृत) प्राणों का पालन करो । (यज्ञे) उस संगम स्थान, एक मात्र केन्द्र उपास्य देव में (छन्दांसि) प्राणगण ही (मरुतः) मरुत रूप हैं, वे भी (स्वाहा) उस यज्ञमय आत्मा में सुख से आहुति हों, उसमें लीन हों ।

टिप्पणी— यह भी उपर्युक्त हवन सदृश ही है ।

न होमं होममित्याहुः समाधौ तत्तु भूयते ।
ब्रह्माग्नौ हूयते प्राणः होमकर्म्म तदुच्यते ॥५५॥

(ज्ञानसंकलिनी तन्त्र)

अर्थ— होम को होम नहीं कहते हैं, ब्रह्माग्नि में प्राण रूप घृत की आहुति देने को ही असली होम कहते हैं ।

(४) एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥६॥

खण्ड १ काण्ड ५ सू० २६ मन्त्र ६ पृष्ठ ६४३

भा०— (इयम्) यह (अदितिः) अखण्ड चितिशक्ति, प्रकाशस्वरूप विवेक ख्याति (प्रोक्षणीभिः) प्रोक्षण-दिव्य-जलों द्वारा आनन्दधाराओं और ज्ञानों द्वारा और (बर्हिषा) बढ़नेवाले ब्रह्मज्ञान से (यज्ञं तन्वाना) यज्ञमय देव का साक्षात् कराती हुई (आ अगन्) प्रकट होती है। (स्वाहा) इसमें मग्न होना ही परम आहुति है। दिव्याः आपः प्रोक्षणयः ॥ तै० २।१।५।१॥ धर्ममेघ समाधि में आत्मभूमि में वर्षनेवाला सोमविन्दु रस ही 'प्रोक्षणी' है। प्रोक्षण=चारो ओर जल छिड़कना, मारना, यथार्थ पशु हनन।

(५) विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥

खण्ड १ काण्ड ५ सू० २६ मन्त्र ७ पृष्ठ ६४३

भा०— हे (सुयुजः) उत्तम रीति से योग का सम्पादन करनेहारे विद्वान पुरुषो! (अस्मिन् यज्ञे) इस योगमय अध्यात्म-यज्ञ में (विष्णुः) वह प्रभु परमात्मा (तपांसि) तपस्याओं का (युनक्तु) आपमें सफलतापूर्वक लगावे। (स्वाहा) यही सबसे श्रेष्ठ आहुति है।

(६) त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा॥ ८॥

खण्ड २ काण्ड ५ सू० २६ मन्त्र ८ पृष्ठ ६४३

भा०—हे (सुयुजः) उत्तम योगियो! (अस्मिन् यज्ञे) इस योगमय आत्मयज्ञ साक्षात्कार में (त्वष्टा) सबका उत्पादक प्रभु (बहुधा रूपा) नाना प्रकार के रूपों-इन्द्रियों को (युनक्तु) युक्त करे (स्वाहा) यही उत्तम आहुति है।

टिप्पणी—उपर्युक्त तीनों यज्ञ आध्यात्मिक हैं। ध्यानाभ्यास द्वारा ये यज्ञ होते हैं।

-:: आत्मयज्ञ ::-

(७) यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१॥

खण्ड २ काण्ड ७ सू०५। १पृष्ठ २३७

भा०— (देवाः) देवगण, विद्वान पुरुष (यज्ञेन) यज्ञ अर्थात् समाधिरूप आत्मयज्ञ से (यज्ञम्) सबके पूजनीय परम आत्मा की (अयजन्त) उपासना करते हैं (तानि) वे ही (प्रथमानि) सबसे उत्कृष्ट (धर्माणि) मोक्ष प्राप्ति और अभ्युदय के साधन (आसन्) हैं। (ते) वे इन योग समाधि की साधना करनेहारे योगिजन (महिमानः) महत्त्व गुण को प्राप्त करके (नाकम्) दुःखरहित मोक्षाख्य परम पुरुषार्थ को (सचन्त) प्राप्त होते हैं। (यत्र) जिसमें कि (पूर्वे) पूर्व मुक्त हुए (साध्याः) साधनासिद्ध (देवाः) ज्योतिर्मय, मुक्त पुरुष (सन्ति) विराजते हैं। 'नाक' अर्थात् स्वर्ग का लक्षण—

दुःखेन यन्न संभिन्नं नच ग्रस्तमनन्तरम् ।
अभिलाषोपनीतं यत् सुखं स्वर्गपदास्पदम् ॥

टिप्पणी— इस मन्त्र में समाधिरूप आत्मयज्ञ-द्वारा ईश्वर की उपासना कही गई है ।

-:: प्रकाशमय लोक ::-

(८) येन देवाज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सु-
कृतस्य लोकम् । तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारो-
हन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥३७॥

खण्ड ३ काण्ड ११ सू० १ मन्त्र ३७ (४) पृष्ठ १०९

भा०— जिस परम ज्योति द्वारा तत्त्व के द्रष्टा लोग ब्रह्मरूप परम ओदन, रसमय ज्ञान का परिपाक करके पुण्य कर्मों के फलस्वरूप प्रकाशमय लोक को प्राप्त होते हैं, उसी परम ज्योति द्वारा हम भी परम तेजोमय, उत्कृष्टतम, सुखमय लोक पर चढ़ते हुए पुण्य कर्मों से प्राप्त होने योग्य लोक को प्राप्त हों । यह सूक्त 'ब्रह्मरूप ओदन' अर्थात् ब्रह्मज्ञान को परिपक्व करके मोक्ष प्राप्त करने पर लगता है ।

टिप्पणी— ज्योति उपासना द्वारा परम तेजोमय, उत्कृष्टतम सुखमय लोक पर आरूढ़ होने की बात है । यह आरूढ़ता शरीर के अंदर होती है । सन्तों के ग्रन्थों में ज्योति और शब्द साधन द्वारा उत्कृष्ट-उत्कृष्टतर तलों में आरूढ़ होने की बातें हैं ।

यथा— 'गगन मण्डल के बीच में, तहवाँ झलके नूर[1] ।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर ॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय ।
पलकों की चिक डारिके, पिय को लिया रिझाय ॥

१ ज्योति

कबीर कमल प्रकाशिया, ऊगा निर्मल सूर ।
रैन अँधेरी मिट गई, बाजै अनहद तूर ॥'
'चन्दा झलके यहि घट माँहीं । अन्धी आँखन सूझत नाहीं ॥'
'यहि घट चन्दा यहि घट सूर । यहि घट बाजै अनहद तूर॥'
'तुम जाइ अँजोरे बिछाओ, अँधेरे में का करिहो ॥ टेक ॥
जब लग स्वाँसा दीप जरतु है, जैसे बने तो बनावो ॥१॥
गुन के पलँग ज्ञान कै तोसक, सूरति तकिया लगावो ॥२॥
जो सुख चाहो सो सत महले*, बहुरि दुक्ख नहिं पावो ॥३॥
दास कबीर गुरु सेज सँवारो, उनकी नारि कहावो ॥४॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, आवागमन मिटावो ॥५॥'
(कबीर साहब)

'तारा चड़िआ लंमा[१] किउ नदरि[२] निहालिया राम ।
सेवक पूर करंमा[३] सतिगुरु सबदि दिखालिआ राम ॥
गुर सबदि दिखालिआ सचु समा लिया अहिनिसि[४] देखि बिचारिआ ।
धावतु[५] पंच[६] रहे धरु जाणिआ कामु क्रोध विषु मारिआ ॥
अंतरि जोति भई गुरु साखी[७] चीने राम करंमा[८] ।
नानक हउमै[९] मारि पतीणे[१०] तारा चढ़िआ लंमा ॥१॥
गुरमुख जागि रहे चूकी अभिमानी राम ।
साचि समानी गुरमुखि मनि भाणी[११] गुरमुखि साबुत[१२] जागे ।
साचु नामु अम्रित गुरि दीआ हरि चरणी लिव[१३] लागे ॥

*परम अविनाशी सुख सातवें लोक में पहुँचे बिना नहीं प्राप्त हो सकता ।
(१) फाँदकर । (२) नजर किया । किउ = क्या । (३) कर्म । (४) दिन-रात । (५) चलायमान । (६) पाँच । (७) गवाह । (८) दया । (९) अहंकार । (१०) विश्वास किया । (११) भाया, अच्छा लगा । (१२) सोने से वा स्वप्न से । (१३) लौ = लव ।

प्रगटी जोति जोति महि[१] जाता[२] मनमुखि भरमि भुलाणी ।
नानक भोर भइया मनु मानिआ जागत रैणि[३] बिहाणी[४] ॥२॥'

(गुरु नानक)

'साहिब साहिब क्या करै, साहिब तेरे पास ।
साहिब तेरे पास याद करु होवे हाजिर ॥
अन्दर धसि के देखु मिलैगा साहिब नादिर ॥
मान मनी हो फना नूर तब नजर में आवै ।
बुरका डारै टारि खुदा बाखुद दिखरावै ॥
रूह करै मेराज[५] कुफर का खोलि कुलाबा[६] ।
तीसो रोजा रहे अन्दर में सात रिकाबा[७] ॥
लामकान में रब्ब को पावै पलटू दास ।
साहिब साहिब क्या करै, साहिब तेरे पास ॥'

(पलटू साहब)

चलो चढ़ो मन यार महल अपने ॥ टेक ॥
चौक चाँदनी तारे झलकैं, बरनत बनत न जात गने ॥१॥
हीरा रतन जुड़ाव जड़े जहँ, मोतिन कोटि कितान बने ॥२॥
सुखमन पलँगा सहज बिछौना, सुख सोवो को करै मने ॥३॥
दूलन दास के साईं जगजीवन, को आवै यह जग सुपने ॥४॥

(दूलनदासजी)

-: हृदयों में ध्वनि कर रहा है :-

(९) वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत्। मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१५॥

खंड ४ सू० १२६ काण्ड २० मन्त्र १५ पृष्ठ ७०७

(१) में, अन्दर। (२) जाना, ज्ञान प्राप्त किया। (३) रात। (४) भोर हुआ, सबेरा हुआ। (५) चढ़ाई। (६) जंजीर, सिकड़ी। (७) पद, स्थान।

भा०— (न) जिस प्रकार (तिग्मशृङ्गः) तीखे सींगोंवाला (वृषभः) वीर्य सेवन में समर्थ साँड़ (यूथेषु अन्तः) गौओं के रेवड़ के बीच में (रोरुवत्) बराबर गर्जना करा करता है, उसी प्रकार तू सबके हृदय में रस वर्षन करनेहारा परमेश्वर (तिग्मशृङ्गः) अंधकारों का नाश करनेवाले तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त होकर (यूथेषु अन्तः) नाना यूथों, सम्मिलन करने योग्य स्थानों, हृदयों में (रोरुवत्) ध्वनि कर रहा है, 'सोहं' का नाद बजाता रहता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! (यं) जिस परम रस को (भावयुः) भक्ति भावों से युक्त उपासक (ते) तेरे निमित्त या तुझसे (सुनोति) उत्पन्न करता है, प्राप्त करता है वह (मन्थः) सब दुःखों का मंथन, विनाश कर देने वाला एवं हृदय को मंथन कर देनेवाला, अति आह्लादकारी (ते) तेरा आनन्द रस (हृदे) हृदय की (शं) शान्ति देनेवाला होता है। (इन्द्रः विश्वसस्मात् उत्तरः) इन्द्र, परमेश्वर सब स्थावर-जंगम जगत से उत्कृष्ट, परमानन्दकारी है।

टिप्पणी— इस मन्त्र में वर्णन है कि परमात्मा अन्धकार को नष्ट करनेवाले तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त होकर हृदयों में ध्वनि कर रहा है, 'सोहं' का नाद बजाता रहता है। सन्तगण के तो ये ज्योति और नाद परम ध्येय हैं। इसके द्वारा ही वे मोक्ष और परमात्मा प्राप्ति का उपदेश दे गये हैं और देते हैं।

॥ इति अथर्ववेदः ॥

॥ वेद-दर्शन-योग समाप्त ॥

वेदों की संस्करण-सूची, जिनका संकलन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है।

-:: ० ::-

ऋग्वेद संहिता, प्रथम खण्ड तृतीयावृत्ति संख्या २००८ वि०।
(भाषा-भाष्य)
(भाषा-भाष्य) द्वितीय खण्ड प्रथमावृत्ति सं० १९९० वि०।
(भाषा-भाष्य) तृतीय खण्ड प्रथमावृत्ति सं० १९९१ वि०।
(भाषा-भाष्य) चतुर्थ खण्ड प्रथमावृत्ति सं० १९९१ वि०।
(भाषा-भाष्य) पंचम खण्ड प्रथमावृत्ति सं० १९९२ वि०।
(भाषा-भाष्य) षष्ठम खण्ड प्रथमावृत्ति सं० १९९२ वि०।
(भाषा-भाष्य) सप्तम खण्ड प्रथमावृत्ति सं० १९९३ वि०।

सामवेद-संहिता

(भाषा-भाष्य) चतुर्थावृत्ति सं० २००८ वि०।

यजुर्वेद

(भाषा-भाष्य) प्रथम खण्ड द्वितीयावृत्ति सं० १९९६ वि०।
(भाषा-भाष्य) द्वितीय खण्ड द्वितीयावृत्ति सं० २००५ वि०।

अथर्ववेद

(भाषा-भाष्य) प्रथम खण्ड द्वितीयावृत्ति सं० १९८९ वि०।
(भाषा-भाष्य) द्वितीय खण्ड तृतीयावृत्ति सं० २००८ वि०।
(भाषा-भाष्य) तृतीय खण्ड तृतीयावृत्ति सं० २००९ वि०।
(भाषा-भाष्य) चतुर्थ खण्ड द्वितीयावृत्ति सं० २००२ वि०।